श्री श्री गौर नित्यानन्दौ जयतः।
श्री श्री राधाकृष्णाभ्याम् नमः।।

साधन भक्ति और उसकी महिमा

साधारणतः भक्ति साधन, भाव और प्रेम इन तीन प्रकार के नामो से जानी जाती है—"सा भक्तिः—साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता"(भः रः सिः १/२/१) साधन भक्ति यथा—

"कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सां साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥"

(ऐ 1/2/2)

अर्थात इन्द्रियादि द्वारा साध्या सामान्यभक्ति को ही साधन-भक्ति कहा जाता है, इस साधन भक्ति से ही साधक के साधन-परिमार्जित शुद्ध हृदय में भावभक्ति प्रकटित होती है। साधन भक्ति साध्यभावा है या भावजनिका हैं। प्रश्न हो सकता है कि भाव यदि साध्यवस्तु ही है, तव तो यह कृत्रिम हो जाता है; इसके द्वारा परम पुरुषार्थ-प्राप्ति की सम्भावना कैसे हो सकती है? इसलिए कहा गया है-"नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता" नित्यसिद्ध-भक्तगण के हृदय में विशेष रूप से विराजमान शुद्धसत्त्व भाव के साधक हृदय में स्वयं प्राकट्य को ही साध्यता कहा जाता है, अतएव इसमें कृत्रिमता की कोई आशंका नहीं है। साधन भक्ति ही

Scanned with CamScanner

जव कृत्रिम नहीं है, तो भावभक्ति की तो कृत्रिम होने की कोई सम्भावना ही नहीं है। यह साधन भक्ति भी स्वरूप शक्ति की वृत्ति विशेष साधक के निर्गुण चित्त, इन्द्रिय, काया में स्फूर्त्ति प्राप्त होती है एवं साधक श्रीभगवान की स्वरूपशक्ति की कृपा से निर्गुण-साधनभक्ति-याजन में समर्थ हो जाता है।

श्रीमन्महाप्रभु के प्रियपार्षद षड्गोस्वामिपाद के अन्यतम आचार्य श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने अपने "भक्तिसन्दर्भ" ग्रन्थ में साधन भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। कारण "चित्त द्रढ़ हञा लागे महिमा ज्ञान हैते।" (चै: च: १/२/१००) साधन भक्ति की महिमा का ज्ञान होने से साधक का चित्त दृढ़ भाव से भक्ति याजन में समर्थ हो जाता है। इस उद्देश्य से ही श्रील गोस्वाभिपाद ने साधन भक्ति की व्याख्या के पहले ही इसकी विभिन्न प्रकार की महिमा का वर्णन किया है। हम भी इस प्रबन्ध में उनके द्वारा वर्णित साधन भक्ति की महिमा समूह की व्याख्या करने के वाद साधनभक्ति का वर्णन करेंगे।

साधन भक्ति के विभिन्न गुण :—

(१) परमधर्मत्व :— एक मात्र श्रवणादि साधनभक्ति को ही परमधर्म कहा जाता है, कर्म, ज्ञान, योगादि अन्य किसी साधना को नहीं। श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ही श्रीपाद सूतमुनि ने श्री शौनकादि ऋषिगण के ''मनुष्य का

Scanned with CamScanner

ऐकान्तिक (एकनिष्ठ) श्रेय (मंगलकारक) क्या है?" इस प्रश्न के उत्तर में कहा है—

"स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥"

(श्रीमद्भाग.१/२/६)

जिससे भगवान् अधोक्षज में अहैतुकी या फलाभि-सन्धि-रहिता और अप्रतिहता अर्थात् विघ्नादि के द्वारा अनभिभूता श्रवण-कीर्त्तनादि-रूप भक्ति लाभ होती है, उस कारण से यह मानव का परमधर्म है। इसके द्वारा ही मानवात्मा अच्छी प्रकार से प्रसन्नता प्राप्त करती है। धर्म के दो प्रकार है—प्रवृति लक्षण और निवृत्ति लक्षण। स्वर्गसुखादि लाभ के-निमित्त याग, यज्ञादि धर्म के अनुष्ठान मानव के प्रवृत्तिलक्षण धर्म हैं। ज्ञान, योगादि साधनों में मोक्ष लाभ की कामना बनी रहती है; अतः वे भी प्रवृत्ति लक्षण धर्म ही हैं। जिस धर्म से श्रीकृष्ण में मानव की श्रवणादि लक्षण साधन भक्ति हो उसी को परमधर्म कहा जाता है- यही मानव का ऐकान्तिक श्रेय है।

मानव को लक्ष्य करके ही शास्त्र में धर्म की बात कही गई है। जो मानवगण को धारण करे और पोषण करे, उसे ही धर्म कहा जाता है। जिसके द्वारा मानवगण का आत्यन्तिक मंगल या नित्य परमानन्द लाभ हो, जो धर्माचरण

Scanned with CamScanner

का चरम उद्देश्य हो—उसी को परमधर्म कहते है— वही श्रवणकीर्तनादि साधनभक्ति है।

"एतावानेव लोकेऽस्मिन पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्ति योगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥"
(भाः ६/३/२२)

श्री यम महाराज ने अपने दूतगण से कहा— "हे-भृत्यगण! इस जगत में श्रीहरि का नाम कीर्त्तनादि जिसके द्वारा उनमें भक्ति लाभ होती है, उसे ही शास्त्र में मानवगण के— 'परम धर्म' के रूप में वर्णित किया गया है। इसके द्वारा श्रवण कीर्तनादि भक्तियोग की ही अवश्यकर्त्तव्यता प्रदर्शित हुई है। श्रीमत् जीव गोस्वामिपाद इस श्लोक की व्याख्या के प्रसंग में लिखते हैं— "पुंसां जीवमात्राणां परः धर्मः सार्व्वभौमोधर्म एतावान स्मृतः नैतदधिकः। एतावत्त्वमेवाह- तन्नामग्रहणादिभिर्यो भक्ति योगः साक्षाद् भक्तिरिति। एव कारेणान्यव्यावृत्तत्वं स्पष्टयति भगवतीति। नामग्रहणादीन्यपि यदि कर्म्मादौ तत्सादृगुण्याद्यर्थं प्रयुज्यन्ते, तदा तस्य परत्वं नास्ति तुच्छफलार्थं प्रयुक्तत्वेन तदाप्राधाद्रित्यर्थः। तथैक क्षयिष्णु फलदातृत्वष्ण भवतीत भावः" (भक्ति सन्दर्भ- ६१ अनुः) अर्थात् ये ही पुरुषसकल या जीवमात्र का परधर्म्म या सार्वभौम धर्म है। अर्थात् जिस धर्म्म में सभी जीवों का समान अधिकार है। वह

Scanned with CamScanner

धर्म्म क्या है? इसलिए कहा है, श्रीहरि के नाम कीर्तन आदि के द्वारा उनमें जो भक्तिलाभ होती है, तभी तो वह धर्म्म है अर्थात् साक्षाद्भक्ति का अनुष्ठान करना। मूलश्लोक में "एतावानेव" इस एवकार का उल्लेख रहने से अन्य साधनों की व्यावृत्ति या बाधा स्पष्ट ही समझ में आती है। और मूलश्लोक में "भगवति" इस पद के प्रयोग रहने से यह भी समझ में आता है कि भगवान का नाम श्रवण कीर्त्तन आदि यदि कर्म, ज्ञान योगादि के फल भुक्ति,मुक्ति इत्यादि के लाभ के निमित्त प्रयुक्त हो, तो वह श्रवण कीर्तनादि भक्तियोग का परत्व या श्रेष्ठत्व नहीं है। यहाँ पर श्रवण-कीर्तनादि का प्रयोग तुच्छ एवं नश्वर फल के लिए किया गया है, इसलिए यह भक्तियोग के निकट अपराध ही हो जाता है, अर्थात् उससे नामापराध का ही उद्गम होता है। उसके द्वारा पंचम पुरुषार्थ प्रेमलाभ नहीं होता है।

वस्तुतः 'धर्म' कहने से हरिभक्ति को ही समझा जाता है—श्रीकृष्ण ने उद्धव के प्रति कहा—"धर्म्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तः" जिसके द्वारा मुझ में भक्ति उत्पन्न हो, वही धर्म है। 'धृ' धातु के उत्तर 'मन'—प्रत्यय के योग से 'धर्म' शब्द निष्पन्न होता है—धृ+मन्=धर्म। 'धृ' धातु का अर्थ है धारण करना या पकड़ रखना। 'मन' प्रत्यय कर्त्तृवाच्य और करणवाच्य दोनों में ही प्रयुक्त होता है। मन प्रत्यय का

Scanned with CamScanner

कर्तृवाच्य में प्रयोग होने से धर्म शब्द का अर्थ होगा जो धारण करे अथवा जो पकड़ कर रखे। और करणवाच्य में 'मन' प्रत्यय के प्रयोग से धर्म शब्द का अर्थ होगा धारण किया जाय या पकड़ कर रखा जाय जिसके द्वारा। जिस प्रकार जल का धर्म तरलता है। यह तारल्य गुण ही जल को जलत्व में पकड़ कर रखता है। तरल जल जब अधिक शीत से वर्फ में परिवर्तित हो जाता है या अधिक उष्णता से वाष्प में परिवर्तित हो जाता है, तब उस वर्फ व वाष्प में तरलता गुण नहीं रहता है। दोबारा जब वही वर्फ उष्णता के योग से जल में परिवर्तित हो जाता है अथवा वाष्प शीत योग से जल में परिवर्तित हो जाती है तो उसमें फिर तरलता का गुण वापस आ जाता है। उसी प्रकार जीव स्वरूपतः श्रीकृष्ण का दास है —"दासभूतो हरेरेव नान्यस्यैव कदाचन" (श्रुति) जीव स्वरूपतः हरि का दास है, दास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। इसलिए जीव जब तक स्वरूप में अवस्थान करेगा, तब तक भगवद् दास ही रहेगा। जिस प्रकार नित्य मुक्त जीवगण नित्य ही भगवत सेवा में निरत रहते हैं। यह ही कर्तृवाच्य से जीव का धर्म है। इसके अतिरिक्त माया के कार्य के संस्पर्श से जो समस्त नित्यवद्ध जीवगण देहवन्धन प्राप्त कर संसार-कारागार भोग रहे हैं—वे यदि महत्संग और महत्कृपा—क्रम से श्रवण कीर्तनादि हरिभजन का सौभाग्य

Scanned with CamScanner

प्राप्त करते हैं, तो उसके द्वारा वे श्रीकृष्ण सेवा लाभ करेंगे। यही करणवाच्य से जीव का धर्म है—जिसके द्वारा श्रीकृष्ण दास्य का लाभ लिया जा सके। भक्तिसाधना के बिना ज्ञान योग आदि अन्य किसी भी साधन से श्रीकृष्ण दास्य-लाभ नहीं किया जा सकता। "ज्ञान योग दान धर्मे नहे कृष्ण-वश। कृष्ण-वश हेतु एक प्रेमभक्ति रस।।" (चै. च. १/१७)।

"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥"
(भा: ११/१४/२०)

श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा, "हे उद्धव! कर्म, ज्ञानादि से खुली हुयी प्रवला भक्ति मुझे जिस प्रकार वशीभूत कर सकती है, योग, सांख्य, धर्म, वेदपाठ, तपस्या, त्याग इत्यादि उस प्रकार से नहीं कर सकते।" जो भी हो, 'धर्म'-नाम से एकमात्र श्रवण कीर्तनादि रूप साधनभक्ति को समझ लेने पर भी मानव की रुचि और संस्कारानुरूप कर्म, ज्ञान, योग आदि भी धर्म-नाम से कहे जाते हैं इस कारण साधनभक्ति को 'परमधर्म' की उपाधि दी गई हैं। श्रील यम महाराज की अपने दूतगण के प्रति उक्ति (भा: ६/३/२२)—

"एतावानेव लोकेऽस्मिन पुंसां धर्म: पर: स्मृत:।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभि:॥"

अर्थात् नाम-कीर्तनादि द्वारा श्रीकृष्ण में जो भक्ति-योग

Scanned with CamScanner

है, उस को ही जीव का परम धर्म कहा गया है।

(२) **"सर्वकाम प्रदत्व"**—साधन भक्ति के द्वारा मानवगण सव प्रकार की काम्य वस्तु लाभ करने में समर्थ हो जाते हैं। शुद्धभक्तगण के हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम और उनकी सेवा कामना को छोड़कर अन्य किसी प्रकार की कामना नहीं रहती है। इसका कारण यह है कि—कृष्ण बिना अन्य कामना हृदय में रहने से साधन भक्ति का फल जो प्रेम है उसे प्राप्त नही किया जा सकता है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भजन का सुख भी उसको अनुभव नहीं होता हैं।

"भुक्ति मुक्ति स्पृहा यावत पिशाची हृदि वर्त्तते।
तावद्भक्ति सुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥"

अर्थात् "भुक्ति-मुक्ति स्पृहा रूपी पिशाची जब तक हृदय में विद्यमान रहती है, तब तक उस हृदय में भक्ति सुख का अभ्युदय कैसे हो सकता है?" महत्कृपा प्राप्त भक्तगण जानते हैं—"भुक्ति-मुक्ति आदि वाञ्छा मने यदि रय। साधन करिलेओं प्रेम उत्पन्न ना हय।।" (चै:च:) इसलिए वे भक्तिसाधना के प्रारम्भ में ही भुक्ति-मुक्ति आदि कृष्णेतर-कामना को छोड़कर श्रीकृष्ण की प्रेमसेवा की अभिलाषा से श्रीहरि का भजन करते हैं। जो उस प्रकार के महत्संग या महत् कृपा का लाभ नहीं कर पाते है, वे सब सकाम उपासकगण यदि भुक्ति-मुक्ति आदि की कामना अन्तर में

Scanned with CamScanner

लेकर श्रीहरि का भजन करते हैं, साधनभक्ति अनायास ही उनकी वह सब कामना पूर्ण करती है।

इसलिए श्रीमद्भागवत कहती है–

"अकामः सर्व्वकामो वा मोक्षकाम उदारधी।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम॥"

–(भाः २/३/१०)

"स्वसुख-वासनाशून्य एकान्त भक्त, अथवा धनादि सर्वकाम-कर्मी अथवा मोक्षकाम-ज्ञानी–चाहे जो भी हो, वे यदि उदार वुद्धि या सुवुद्धि हों, तो वे तीव्र भक्ति योग से श्रीहरि का भजन करेंगे।" श्रीपाद शुकदेव मुनि ने श्रीमद्भागवत के इस प्रकरण में महाराज परीक्षित के प्रति पहले मन्दबुद्धिसम्पन्न सकाम अन्यदेवोपासकगण की विभिन्न देवदेवी की उपासना की बात कही है एवं धन, सम्पद, स्त्री आरोग्य, आयुष्कामी इत्यादि व्यक्तिगण उनकी अपनी-अपनी कामनापूर्ति के निमित्त तदनुरूप किस किस देव-देवी की उपासना करें–वह बात भी कही है। अन्त में "अकामः सर्व्वकामों वा" इस श्लोक से निष्काम सर्वकाम, और मोक्षकाम ये यदि उदारधी या सुबुद्धि होंगे, तो अन्यदेवोपासना का त्याग कर श्रीहरि का ही भजन करेंगे, यह बात कही है। इससे समझा जाता है कि श्रीहरि के भजनकारीगण ही 'सुबुद्धि' एवं अन्यदेवोपासकगण 'कुबुद्धि' हैं। यहाँ पर तीव्र

Scanned with CamScanner

भक्तियोग कहने का तात्पर्य है कि सब प्रकार के साध्य का श्रेष्ठ साधन हरिभक्ति ही है यह जान कर श्रीहरि का भजन ही तीव्र भक्तियोग है। (श्रीजीव), अथवा आकाश मेघाच्छन्न न होने से जिस प्रकार तीव्र सूर्यकिरण पृथ्वी पर सीधे पड़ती है—उसी प्रकार कर्मज्ञानादि के द्वारा अनावृत-भक्ति ही तीव्र भक्ति योग है। (श्रीलविश्वनाथ) इस भाव से श्रीहरि का भजन करने से सकाम साधकगण का भी श्रीहरि और उनकी साधनभक्ति की कृपा से अन्त में कामना के अपगम से भजन निष्काम या शुद्धभक्ति में ही पर्यवसित होता है। "ततश्च शुद्ध भक्ति सम्पादनायै—वान्ते पर्यवसिष्यत्य सावित्य भि प्रायेण सविशेषणमुपदिष्टम्।" (भा: २/३/१० श्लोक की क्रमसंदर्भ टीका) अर्थात् अन्य कामी का हरिभजन भी अन्य कामना एवं मोक्षकामनादि के प्रस्थान से अन्त में शुद्ध या निष्काम भजन में जाकर परिणाम प्राप्त होता है एवं प्रेमफल ही प्रसव करता है, इस अभिप्राय से ही श्रीपादशुकदेवमुनि सर्वकाम व्यक्ति को भी 'सुबुद्धि' और उसके भजन को भी 'तीव्र भक्तियोग' कह रहे हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत में देखते है—

"अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन।
ना मागिलेओ कृष्ण तारे देन स्वचरण॥
कृष्ण कहे—आमाय भजे, माँगे विषय सुख।
अमृत छाड़ि' विष माँगे एइ बड मूर्ख॥

Scanned with CamScanner

आमि विज्ञ, एइ मूर्खे विषय केने दिव?
स्वचरणामृत दिया विषय भुलाइव॥"

-(चै:च: मध्य २२ परि:)

फिर साधनभक्ति भी सकाम साधकगण को श्रवण कीर्तनादि भजन रस का आस्वादन दान कर उसको निष्काम या श्रीकृष्ण दास्यनिष्ठ कर देती है। यथा–

"काम लागि' कृष्ण भजे, पाय कृष्णरसे।
काम छाड़ि' दास हैते हय अभिलाषे॥" (ऐ)

इस भजन रस का आस्वादन-माधुर्य इतना अपूर्व है कि सकाम उपासक श्रीलध्रुव महाशय राज्यपद प्राप्त करने की कामना से हरिभजन करने गये लेकिन भगवद दर्शन प्राप्त होने पर उनके निकट सत्संग से हरिकथा श्रवण करने के वर की ही प्रार्थना की थी। यथा–

"भक्तिं मुहः प्रवहतां त्वयि में प्रसङ्गो
भूयादनन्त महता ममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्वणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुण कथामृतपानमत्तः॥"

-(भा: ४/६/११)

"हे अनन्त! जो निरन्तर आपके प्रति भक्ति करते हैं, उन सब निर्मलाशय-महत्गण के साथ मेरा संग हो, उनके श्रीमुख से आपका गुणकथामृत-श्रवण होने से प्रमत्त होकर

Scanned with CamScanner

यह अतीव दुःखमय संसार-सागर विना प्रयास के ही पार हो जाऊँगा।" इस श्लोक की व्याख्या में श्रीधरस्वामी पाद लिखते है—"ननु मोक्षं किं न याचसे? अत आह येन महत् प्रसंगेन अञ्जसा अयत्नत एव उरूणिं व्यसनानि यस्मिन तम्।" अर्थात् श्रीभगवान ने कहा—ध्रुव! तुम मुझ से अति दुःखमय संसार-मुक्ति के लिए प्रार्थना क्यों नहीं कर रहे हो। उसके उत्तर में ध्रुव महाशय वोले— "प्रभो! महत्गण के श्री मुख से निर्गत आप का कथामृत-पान ही मेरा एक मात्र प्रार्थनीय है, संसार मुक्ति मेरे विना प्रयत्न के ही प्राप्त हो जायेगी।" अर्थात् भजनानन्द ही भक्त का काम्य है, संसार मुक्ति उसके लिए प्रार्थनीय नहीं है, वह तो आनुसंगिक भाव से उसके निकट स्वयं ही उपस्थित हो जाती है। श्रीसुदामा विप्र की उक्ति—

"स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम्॥"

"श्रीकृष्ण की श्रीचरणसेवा ही स्वर्ग, अपवर्ग, रसातल, पृथ्वी की समस्त सम्पद एवं मानव की सब प्रकार की सिद्धि का मूल है।" श्रील सनतकुमार ने मार्कन्डेय ऋषि के प्रति कहा है—

"विश्शष्टः सर्व्वधर्म्माणां धर्म्मो विष्णुर्च्चनम नृणाम्।
सर्व्वयज्ञ तपो होम तीर्थस्नानैश्च यत फलम्॥

Scanned with CamScanner

तत्फलं कोटिगुणितं विष्णुं सम्पूज्य चाप्नु यात्।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन नारायणमिहार्च्चयेंत॥"

(स्कन्दपुराण-सनतकुमार मार्कण्डेय संवाद)

"सभी धर्मो में मानवमात्र के लिए श्रीविष्णु का अर्च्चन ही विशिष्ट धर्म है। सर्वयज्ञ, तपस्या, होम और तीर्थस्नान के द्वारा जो फल लाभ मिलता हॅ, उसका कोटिगुण फल श्रीविष्णु की पूजा से मिलता है, अतएव समस्त प्रयत्न से श्रीनारायण की ही अर्च्चना करूँगा।" श्रीब्रह्म-नारद संवाद से भी देखा जाता है—

"अश्वमेध-सहस्त्राणां सहस्रं यः करोति वै।
न तत्फलमवाप्नोति मद भक्तैर्यदवाप्य ते॥"

"मानव हजारों अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कर जो फल लाभ नहीं कर पाते, मेरे भक्तगण वह अनायास ही लाभ कर लेते हैं।"

वास्तव में प्रेमपिपासु निष्काम-भक्तगण श्रीहरि का भजन कर किसी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं करते हैं, इसलिए शास्त्र में जो सब फलश्रुति देखी जाती हैं, यह सब साधन भक्ति की महिमा प्रदर्शन के निमित्त है। नश्वर जागतिक और स्वर्गीय सुख-सम्पदादि की बात तो दूर रहने दो श्रीभगवान् भक्त को चतुर्विध मुक्ति देना चाहते हुए भी वे उसे ग्रहण नहीं करते है।

Scanned with CamScanner

"सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैक त्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जना॥"

-(भाः ३/२६/१३)

देवहूति के प्रति श्रीकपिलदेव ने कहा, "हे मातः! मेरे भक्तगण मेरी सेवा को छोड़ सालोक्य (मेरे समान लोक में वास), सार्ष्टि (समान ऐश्वर्य) सामीप्य (निकट ही अवस्थान) सारूप्य (समानस्वरूपता)—यह चतुर्विध मुक्ति मेरे देने की इच्छा होने पर भी ग्रहण नहीं करते हैं।" इसलिए इन सब की कामना भक्त के अन्तर में कभी भी नहीं जागती है। इस श्लोक की व्याख्या में श्रीमद् जीवगोस्वामिपाद लिखते हैं—'मत्सेवनं विनेति गृणन्ति'चेत्तर्हि मत्सेवार्थमेव गृणन्ति न तु तदर्थमेवेत्यर्थः।'(क्रमसन्दर्भ टीका) श्रीकपिलदेव जो 'मत्सेवनं विना' की बात कह रहे हैं, इसके द्वारा समझा जाता है कि श्रीहरि की सेवा के निमित्त कदाचित् भक्तगण सालोक्यादि ग्रहण कर लेते हैं किन्तु मुक्ति के लिए नहीं। यह चतुर्विध मुक्ति दो प्रकार की है (१) सुखैश्वर्योत्तरा (२) प्रेमसेवोत्तरा। प्रेमसेवोत्तरा मुक्ति भी भक्तगण कदाचित् ग्रहण करते हैं। "सालोक्यादि चारि यदि हय सेवाद्वार। तवे कदाचित् भक्त करे अंगीकार॥"(चैः चः मध्य—छः परिः)

(३) "**अशुभघ्नत्व**"—साधनभक्ति आश्रितजन के निखिल अशुभ का विनाश करती है। "सध्री चीनो ह्ययं

Scanned with CamScanner

लोके पन्था क्षेमोऽकुतोभयः''(भाः ६/१/१६) श्रीपाद-शुकदेवमुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा है—'इस विश्व में भक्तिमार्ग ही उचित पथ है क्योंकि यह मंगलप्रद एवं संपूर्ण भयरहित है।' श्रीधरस्वामी इस श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं—"अतो न ज्ञानमार्ग इवासहायता-निमित्तं भयं नापि कर्म्ममार्गवत् मत्सरादियुक्तेभ्यो भयमिति भावः।" अतएव भक्तिमार्ग में ज्ञानमार्ग की तरह असहायता के किसी प्रकार का भय नहीं है। इसका कारण यह है कि भक्तिमार्ग में सर्वशक्तिमान श्रीहरि भक्त के एकान्त सहायक हैं एवं कर्म मार्ग की तरह इसमें मात्सर्ययुक्त व्यक्ति से भी किसी प्रकार के भय की सम्भावना नहीं है, कारण यह है कि निर्मत्सर सज्जनगण को ही भक्तिमार्ग की योग्यता प्राप्त है। स्कन्दपुराण में द्वारकामाहात्म्य में चन्द्रशर्मा के प्रति श्री भगवान कहते हैं—

"मद्भक्तिं वहतां पुंसामिऽलोके परेऽपि वा।
नाशुभं विद्यते लोके कुलकोटिं नयेद्दिवम्॥"

"मेरे भक्तगण का इस लोक और परलोक में कोई अशुभ नहीं रहता है; लेकिन वे कोटिकुलों को वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति कराते है।" मानव हृदय की विषय वासना को 'अशुभ' कहा जाता है, कारण इस विषय वासना से ही जीव के निखिल अशुभ के मूलीभूत हेतु संसार-व्याधि की उत्पत्ति

Scanned with CamScanner

होती है। श्रवणादि साधनभक्ति द्वारा यह विषय वासना समूल नष्ट हो जाती है। ("श्रृण्वतः श्रद्धया नित्यं " इत्यादि भा: २/८/४-५ श्लोक एवं उसकी स्वामी टीका द्रष्टव्य) 'अशुभ' शब्द का एक अर्थ भक्ति के प्रतियोगी समस्त अनर्थ (श्रीजीव पाद), फिर त्रिताप, अमंगल, पाप आदि भी अशुभ शब्द के शब्दकोशीय अर्थ– यह सब भी श्रवणादि साधनभक्ति द्वारा समूल नष्ट हो जाते हैं।

(४) **"सर्वान्तराय-निवारकत्व"** — साधन भक्ति साधक के सभी प्रकार के अन्तराय अथवा विघ्न की निवारक होती है। ब्रह्मादि देवगण ने श्री देवकीदेवी के गर्भगत श्रीकृष्ण की स्तुति के प्रसंग में कहा है–

"तथा न ते माधव तावकाः कव्चिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि वद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनाय कानीकपमूर्धसु प्रभो॥" (भा: १०/२/३३)

"हे माधव! आप में भक्तिशून्य ज्ञानी, योगी इत्यादि साधकगण जिस प्रकार अपने अपने साधन पथ से यहाँ तक कि सिद्धावस्था से भी विच्युत हो जाते हैं, आप के श्रीचरणाश्रित भक्तगण निज साधन-पथ से कभी भ्रष्ट नहीं होते हैं। वे आप के द्वारा रक्षित हैं, इसलिए वे हर प्रकार के बिघ्न को अतिक्रम कर निर्भय आप के श्रीचरणों का भजन करते हैं।" इस

Scanned with CamScanner

श्लोक की वैष्णवतोषणी टीका में लिखा है—"विनायकानी-कपमूर्द्धसु विशेषेण चरन्ति निर्भयत्वेन तानेव महविघ्नवर्गेशान् विघ्नकरणार्थं मागतान् सोपानीव कृत्वा-श्रीवैकुण्ठ पद मारोऽन्तीत्यर्थः। तेषां भक्ति विघ्नेऽनुतापः स्यात तेन च श्रीभागवतो महती कृपा स्यादित्यर्थः।" भक्तगण महाबिघ्न वर्ग के मस्तक के ऊपर निर्भय विचरण करते हैं, विघ्न उत्पन्न करने के लिए आगत महाबिघ्न समूह को सोपान के समान कर वे श्रीवैकुन्ठ पद पर आरोहण करते हैं। अर्थात् बिघ्न वर्ग उनके भजन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न कर सोपान के समान भगवल्लोक-आरोहण के निमित्त उनकी उन्नति में सहायता करते हैं। तात्पर्य यह है कि भक्ति पथ में बिघ्न आने से भक्त के हृदय में अनुताप होता है, उससे उनके हृदय में विपुल दैन्य और आर्ति का उद्रेक होता है; वे एकान्तभाव से भगवच्चरण में प्रपन्न होते हैं और भगवान की महान कृपा से धन्य हो जाते हैं। इसलिए श्रीपाद सूतमुनि ने परमधर्म साधनभक्ति के वर्णन में (भाः १/२/६ श्लोक) जो उसके दो स्वरूपभूत गुण की बात कही है वे हैं—अहैतुकी और अप्रतिहता, इस अप्रतिहता शब्द की व्याख्या में श्रीधर स्वामी ने साधन भक्ति को बिघ्नरहिता न कह कर बिघ्नकर्त्तृक अनभिभूता कहा है।

श्रीभक्तिसंदर्भ में इस श्लोक की व्याख्या का तात्पर्य

Scanned with CamScanner

यह है कि इसके पूर्ववर्ती "येऽअन्येऽरविन्दाक्ष" इत्यादि (भः १०/२/३२) श्लोक में कहा गया है कि ज्ञान-योगादि मार्ग के साधकगण बहुजन्म साधना के फल से जीवनमुक्ति-दशा लाभ करके भी श्रीहरि के पादपद्म में अनादर के कारण अधः पतित हो जाते हैं। उनका जिस प्रकार सिद्धावस्था से पतन होता है, भक्तगण का किन्तु साधनावस्था से भी पतन नहीं होता है, वरन् उन्नति ही होती है। प्रश्न हो सकता है कि श्रीमद्भागवत में परमभक्त श्रीचित्रकेतु गन्धर्व की वृत्रासुर की, भक्त इन्द्रद्युम्न राजा की गजेन्द्र की, राजर्षि भरत की हरिणजन्म की कथा का वर्णन है? उनकी सज्जन्म से अधः पतन की बात क्यों देखी जाती है? उसके उत्तर में कहा गया कि उनकी उत्कृष्ट जन्म से विच्युति होने पर भी भक्तिवासना की किसी प्रकार की हानि नहीं हुई। बल्कि पश्चाताप की अग्नि मे दग्ध होकर भक्तिकाँचन-मुद्रा अधिकतर उज्वल ही हो उठी। उनके असुरदेह, हाथी देह और मृगदेह में भी श्रीहरि के भजन करने की प्रवल वासना प्रदर्शित हुई है। दूसरी ओर ज्ञानादिमार्ग में जीवनमुक्त पुरुषगण की भी पुनः संसार-बन्धन की बात देखी जाती है।

"जीवनमुक्ता अपि पुनर्वन्धनं यान्ति कर्म्मभिः।
यदचिन्त्य महाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥"

(वासना भाष्यधृत श्रीभगवत् परिशिष्ट वचन)

Scanned with CamScanner

"अचिन्त्यशक्तिशाली श्रीभगवान के प्रति यदि अपराधी हों तो जीवनमुक्त पुरुषगण भी संसारबन्धन दशा को प्राप्त होते हैं।" उस स्थान पर ही यह वर्णित है कि भक्तियोगी कभी कर्मबन्धन-प्राप्त नहीं होते हैं।

"जीवन्मुक्ताः प्रवद्यन्ते क्वचित संसार वासनाम्।
योगिनो न विलिप्यन्ते कर्म्मभिर्भगवत् पराः॥"

"जीवन-मुक्त योगीपुरुषगण कभी कभी संसार दशा को प्राप्त होते हैं, किन्तु भगवत् परायण भक्तगण कभी भी कर्म द्वारा लिप्त नहीं होते हैं।" भक्तगण का विघ्न द्वारा रुकावट न होने का कारण श्रीहरि के प्रति उनका सुहृदभाव विद्यमान होना ही है। यहाँ 'सुहृदभाव' कहने का अर्थ श्रद्धामार्ग ही समझना होगा। इसलिए वे साधक ही है। यह साधकगण के प्रति श्रीहरि का 'सुहृदभाव' ही है जिसके कारण वे उसकी सब प्रकार से रक्षा करते हैं। यथा—

"त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः।
स्वौको विलङ्घ्य परमं ब्रजतां पदं ते॥
नान्यस्य बर्हिषि वलीन् ददतः स्वभागान्।
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि॥"

(भाः ११/४/१०)

मदन, मारुत और देववधूगण वदरिकाश्रम में श्री नर नारायण की स्तुति के प्रसंग में कहते हैं—जो यज्ञ में देवगण

Scanned with CamScanner

को वलि (पुरोडशादि) प्रदान करते रहते हैं उनके प्रति देवगण कोई विघ्न नहीं करते हैं, किन्तु जो देवतान्तर की आराधना त्याग कर एकमात्र तुम्हारी ही आराधना करते हैं, उन साधकगण के प्रति देवगण बहुत से विघ्न उत्पन्न करते हैं। वे मन में सोचते है, जिन्होंने इतने दिन तक हमारे पैर के नीचे वास किया था, अब वे हमे अतिक्रम कर वैकुण्ठ में आरोहण करेगे, यह असह्य है। उस कारण मात्सर्य वश देवगण—उनके प्रति विभिन्न प्रकार के बिघ्न की रचना करते हैं किन्तु आपके द्वारा सुरक्षित होने के कारण बिघ्न के मस्तक पर पैर रखकर अथवा उसको सोपान बनाकर आपके श्रीचरण के निकट पहुँच जाते हैं।

साधक भक्तगण जो कभी विघ्न के द्वारा विह्वल नहीं होते हैं इस विषय में श्रीपाद कवि योगीन्द्र ने महाराज निमि के प्रति कहा है—

"यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥"

(भा: ११/२/३५)

अर्थात् "हे राजन! इस भागवत धर्म (श्रवणकीर्तनादि) का आश्रय ग्रहण कर मानव कभी प्रमादग्रस्त (भूल/विपत्ति) नहीं होता है। इस भागवत धर्म का पथ इतना प्रशस्त है कि आँख बन्द कर के दौड़ने पर भी इसमे पतन की अथवा

Scanned with CamScanner

पदस्खलन की सम्भावना नहीं है।"

श्रीधरस्वामीपाद ने इस श्लोक की टीका में जो लिखा है उसका तात्पर्य यह हैं कि इस भागवत धर्म या साधन भक्ति के पथ का आश्रय करने से योगादि मार्ग के समान भक्त साधक कभी प्रमादग्रस्त नहीं होते हैं अर्थात् विघ्नादि द्वारा अभिभूत नहीं होते हैं। और आँख बन्द कर दौड़ने से भी इस भागवत धर्म से स्खलित होने की सम्भावना नहीं होती हैं। यहाँ पर निमीलन का अर्थ अज्ञान है। यथा– "श्रुति–स्मृति उभें नेत्रे विप्राणां परिकीर्तिते। एकेन विकलः कानो द्वाभ्यामन्दः प्रकीर्तित इति॥" अर्थात् "साधन पथ पर चलने के लिए श्रुति और स्मृति यह दो नेत्र हैं। जिसका एक नहीं वह काणा और जिसकी दोनों नहीं वह अंधा।" अर्थात् अज्ञान पूर्वक अनुष्ठान करने पर भी भक्त भक्तिपथ से विच्युत नहीं होते हैं। पदन्यास स्थान अतिक्रम कर द्रुतवेग से चलना ही दौड़ना है, इससे भी भागवत धर्म से स्खलन नहीं होता है अथवा कोई दोष नहीं होता है। फिर पतन भी नहीं होता है और फल से भी कोई वंचित नहीं होता है। श्रुति-स्मृति में नाना प्रकार के धर्माचरण का वर्णन होते हुए भी यदि कोई उसका आचरण न करे और श्रवण-कीर्त्तनादि ही करे तब भी वह प्रेमफल लाभ से वंचित नहीं होता है। फिर श्री भगवान् ने कर्दम ऋषि के प्रति कहा है–

Scanned with CamScanner

"न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम।
भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम्॥"

(भा: ३/२१/२४)

"हे प्रजाध्यक्ष (प्रजापते)! जिनका चित्त मुझ में लगा हुआ है उनके द्वारा मेरी अर्चना कभी विफल नहीं होती है। उसमें आप के समान महानुभवगण जो मेरी अर्चना करते हैं वह विफल नहीं होगी यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है।" श्रीकृष्ण ने भी श्रीउद्धव के प्रति कहा है—

"वाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रिय:।
प्राय: प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते॥"

(भा: ११/१४/१८)

"हे उद्धव! मेरे अजितेन्द्रिय भक्तगण विषय के द्वारा वाध्यमान होकर भी प्रगल्भा (निडर) भक्ति के प्रभाव से विषय के द्वारा विह्वल नहीं होते हैं।" इस श्लोक की व्याख्या के प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद लिखते है—"अत्र विषयैवध्यिमानोऽपि विषयैर्नाभिभूयत इत्युभयत्रापि वर्तमान निर्देशात् विषयवाध्यत्वदशाया मपि विषयावाध्यत्वं भक्ति सद्भाबात् यथा वैरिकृत किञ्चिच्छस्त्रा घातं प्राप्तस्यापि न पराभविष्णुता शौर्य सद्भावादिति यथा वा पीतज्वरघ्नमहौष-धस्य तददिवसे आयातोऽपि ज्वरो बाधकोऽप्यवाधक एव तस्य विनश्यदवस्थत्वात दिनान्तरे च सम्यङ्

Scanned with CamScanner

नष्टीभावित्वाच्च।" (सारार्थदर्शिनी टीका) अर्थात् इस श्लोक में "वाध्यमान" पद वर्तमान काल में प्रयोग हुआ है और "नाभिभूयते" पद भी वर्तमान काल में प्रयोग हुआ है। यहाँ पर यह समझा जा सकता है कि जब विषय से बाधित होता है तभी विषय के द्वारा अभिभूत नहीं होता है, कारण उसका हरिभजन है। जिस प्रकार कोई बीरपुरुष युद्धक्षेत्र में शत्रु द्वारा अस्त्राघात प्राप्त कर भी पराभव स्वीकार नहीं करता है कारण उसका शौर्य विद्यमान है। अथवा ज्वराक्रान्त व्यक्ति के ज्वरघ्न औषधि का पान करने पर उसदिन ज्वर आने पर भी उसे अभिभूत नहीं कर पाता कारण ज्वर की तीव्रता दिनान्तर मे सम्यक नष्ट होगी ही। उसी प्रकार विषय वासना की प्रतिषेधक श्रीहरिभक्ति का अनुष्ठान करने से विषय वासना चाहे चित्त को आक्रमण करे किन्तु भक्ति साधन में वाधा नहीं दे पायेगी। इस स्थल पर विषय वासना द्वारा चित्त वाधित होने पर भगवदध्यानादि के द्वारा वह आकर्षित हो जाता है। अर्थात् भगवद ध्यान के प्रभाव से चित्त को श्रीभगवान की ओर आकर्षित करके रखता है; और विषयवासना की चित्त को आकर्षित करने की क्षमता क्रमशः क्षीण होती जाती है। यद्यपि समय-समय पर विषय श्रीभगवान की ओर से चित्त को आकर्षित कर ही लेते है, तथापि "वेद दुःखात्मकान् कामन् परित्यागेऽप्यनीश्वरः"

Scanned with CamScanner

(भा: ११/२०/२७) इत्यादि के अनुसार विषय भोग जो दुःख का कारण हैं यह वे अच्छी प्रकार समझते हैं किन्तु परित्याग मे असमर्थ हैं—उस अवस्था में भी श्रीभगवान के प्रति दैन्य निवेदन के द्वारा श्रीहरिभक्ति की अनुवृत्ति ही घटित होती है। अर्थात् अपनी बहुत चेष्टा प्रयत्न करके के भी निजशक्ति से लय-विक्षेप आदि अनर्थ से चित्त को मुक्त नहीं कर पाते है, तब अपनी शक्ति से कुछ होने का नहीं, यह भलीप्रकार जान कर दीनभाव से श्रीभगवान के चरणों में कातर निवेदन ज्ञापन करते हैं। उसके द्वारा चित्त अभिमान शून्य होकर विगलित होता है, उससे श्रीभगवान की कृपा शक्ति आकर्षण कर सकते हैं।

(५) "**दुष्ट जीवादि का भय-निवारकत्व**"—साधनभक्ति की दुष्ट जीवादि से भय निवारकत्व की बात कही गई है। श्रीमन्नारद ने श्रीयुधिष्ठिर के प्रति कहा है—

"दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनै:।
मायाभि: संनिरोधैश्च गरदानैर भोजनै:॥
हिमवायुग्निसलिलै: पर्वताक्रमणैरपि।
न शशाक यदा हन्तुमपापमसुर: सुतम।
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत॥"

(भा: ७/५/४३-४४)

"हिरण्यकशिपु निजपुत्र प्रह्लाद को वध करवाने के

Scanned with CamScanner

निमित्त दिग्गज गण द्वारा, विषधर सर्पसमूह द्वारा, अभिचार यज्ञ द्वारा, उच्चस्थान से गिराने के द्वारा, आसुरीमाया समूह द्वारा, गर्त्त में निरोध द्वारा, विष भक्षण द्वारा, अनाहार द्वारा हिमवायु अग्नि सलिल में निक्षेप द्वारा पर्वत से क्षेपण द्वारा जब असुरराज—अपने निष्पाप पुत्र का विनाश नहीं कर पाये, तो अत्यन्त चिन्तित हुए, किन्तु उसके विनाश का कोई उपाय नहीं देख पाये। श्रीविष्णु पुराण में श्रील प्रह्लाद की उक्ति से भी देखा जाता है—

"दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः, शीर्णा यदेते न वलं ममैतत्।
महाविपत्पात विनाशनोऽयं, जनार्द्दनानुस्मरणानुभावः॥"

"महाहस्तीसमूह के वज्र के समान कठोर दन्तसमूह जो भग्न हो गये थे इसमे मेरी कोई शक्ति नहीं थी। महा विपद समूह के विनाश होने का एकमात्र कारण श्रीजनार्दन का अनुस्मरण है।" स्मरणांग रूप साधनभक्ति के प्रभाव से ही प्रह्लाद महाशय के असुर द्वारा सद्यप्राण हारक विपद समूह विनाश-प्राप्त हो गये थे। महाहस्ती समूह जब प्रह्लाद को वज्र के समान कठोर दन्तसमूह के द्वारा पीड़ा पहुचाने लगे, तो कोमला भक्ति शक्ति के प्रभाव से वे अत्यन्त कठोर दाँत रुई से भी अधिक सुकोमल हो गये थे। इसी प्रकार अग्नि चन्द्र की अपेक्षा सुशीतल, विष अमृत से भी अधिक सुस्वाद, इत्यादि विरूद्ध धर्म प्राप्त हुआ था। साधनभक्ति के प्रभाव

Scanned with CamScanner

से यह जड़ीय मायाशक्ति का इस प्रकार का पराभव हो जाता है, यही प्रदर्शित हुआ है। फिर श्रीमद्भागवत में (१०/६/३) श्रीशुकदेव मुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा है—

"न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु।
कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि॥"

"जहाँ किसी नित्य-नैमित्तकादि कर्मांग रूप में भी श्रीहरि की राक्षस-विनाशकारी श्रवण-कीर्त्तनादि का अनुष्ठान नहीं होता है, राक्षसीगण उस स्थान पर ही अपना प्रभाव विस्तार करने में समर्थ हैं।" व्यतिरेक भाव से साधनभक्ति का दुष्ट जीव से भय निवारकत्व प्रदर्शित हुआ है। जैसे (श्रीवृहन्नारदीय में)—

"यत्र पूजापरो विष्णोस्तत्र विघ्नो न वाधते।
राजा च तस्करश्चापि व्याधयश्च न सन्ति हि॥
प्रेताः पिशाचाः कुष्माण्डा ग्रहा वाल ग्रहास्तथा।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न वाधन्तेऽच्युतार्च्चकम्॥"

"जिस स्थान पर विष्णु पूजा परायण भक्त अवस्थान करते हैं, उस स्थान पर कोई विघ्न किसी प्रकार वाधा नहीं कर पाते हैं। राजा द्वारा किसी प्रकार की पीड़ा प्रदान, चोरों का उपद्रव, कोई व्याधि इत्यादि उस स्थान पर नहीं रहते हैं। प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड ग्रह, वालग्रह, डाकिनी, राक्षस आदि कोई भी श्रीहरि के अर्चनकारी भक्त को वाधा नहीं दे पाते

Scanned with CamScanner

हैं।" श्रीमद्भागवत के तीसरे स्कन्ध में विदुर-मैत्रेय संवाद (२२/३७) में वर्णन है—

"शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा वाधन्ते हरिसंश्रयम्॥"

श्रीमैत्रेय ने कहा—"हे विदुर! शारीरिक और मानसिक (आध्यात्मिक) अनावृष्टि, अतिवृष्टि वज्रपातादि (आधिदैविक) मानुष या शत्रु द्वारा पीड़ा (आधिभौतिक) इत्यादि क्लेश समूह श्री हरि पदाश्रित भक्तगण को किस प्रकार पीड़ा पहुँचा सकते हैं?" श्री गरुड़ पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन है—

"न च दुर्व्वाससः शापो वज्रष्णापि शचीपतेः।
हन्तुं समर्थं पुरुषं हृदिस्थे मधुसूदने॥"

"जिसके हृदय में श्रीमधुसूदन विराजमान, उस पुरुष को दुर्वासा ऋषि का भीषण अभिशाप और इन्द्र का वज्र भी विनाश करने में समर्थ नहीं है।"

(६) पापघ्नत्व— अब साधनभक्ति के पापनाशकत्व गुण की बात कह रहे हैं। प्रथमतः अप्रारब्धपाप-नाश की शक्ति का वर्णन कर रहे हैं। पूर्वकृत जो सब पाप फलदान में प्रवृत्त नहीं हुये, उस प्रारब्ध के अतिरिक्त अनादिसिद्ध, अनन्त, कूटत्वादि रूप से अनभिव्यक्त पापराशि को ही

Scanned with CamScanner

अप्रारब्ध पाप कहते हैं। श्रीकृष्ण श्रीउद्धव के प्रति कहते हैं—

"यथाग्निः सुसमिद्धार्च्चिर्ः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः॥"

'हे उद्धव! प्रज्वलित अग्नि जिस प्रकार काष्ठराशि को भस्म सात करती है, उसी प्रकार मद्विषया भक्ति निखिल पाप राशि को विनष्ट कर देती है।' इस श्लोक की व्याख्या में श्रीजीव गोस्वामी पाद श्रीधरस्वामीपाद की टीका उद्घृत कर रहे है यथा "पाकाद्यर्थ मपि प्रज्वालितोअग्निर्यथा काष्ठानि भस्मीकरोति, तथा वागादिनामपि कथष्णिन्मद विषया भक्तिः समस्तपापानीति भगवानपि स्वभक्ति-महिम्नाश्चर्येण सम्बोधयति—अहो उद्धव! विस्मयं श्रृणु" इत्येषा। अर्थात् जिस प्रकार पाकादिकार्य सम्पादन के लिए प्रज्वलित-अग्नि काष्ठ समूह को भस्मसात करती है, उसी प्रकार वागिंन्द्रिय के द्वारा अर्थात वहिरिन्द्रिय के द्वारा भी किसी प्रकार मद्विषया भक्ति का अनुष्ठान होने से समस्त पापराशि को नष्ट कर देती है। तात्पर्य यह है कि अग्नि प्रज्वलित करने का मुख्य उद्देश्य रन्धन कार्य को सम्पादन करना है, आनुषंगिक रूप से ही वह काष्ठ समूह को भस्म कर देती है। उसी प्रकार भजन रस के आस्वादन और श्रीभगवच्चरणों में प्रेमप्राप्ति के लिए अनुष्ठित साधनभक्ति आनुसंगिक भाव से ही

Scanned with CamScanner

साधक के अनजाने उसके किये हुए कृत, क्रियमाण और करिष्यमाण इन तीन प्रकार की पापराशि को तत्क्षण नष्ट कर देती है। भगवान भी अपनी साधन भक्ति के महिमा दर्शन से आश्चर्य चकित हो श्री उद्धव की सम्वोधन कर कहते है—हे उद्धव! इस विस्मय के विषय को सुनिये"—"सुसमिद्धार्च्चिरित्यनेन साधनान्त रसापेक्षत्वम शक्यसाध्यत्वं विलम्वितत्वष्ण—निराकृतम्। तदेवं व्यक्तं पाद्मात् तत्क्षणादिति।" (भक्तिसंदर्भ-१२५ अनुः) "यथाग्निः सुसमिद्धाच्चिः" इस द्रष्टान्त के द्वारा श्री भगवदभक्ति का सापेक्षत्व, अशक्य साध्यत्व एवं विलम्वितत्व निराकृत हुआ है। साधनभक्ति अचिन्त्य प्रभाव-सम्पन्ना एवं स्वतन्त्रा होने के कारण किसी साधन की सहायता की अपेक्षा नहीं करती है, निजसाध्य प्रेमदान में परम समर्था एवं प्रेमदान में विलम्ब भी नहीं करती है, यही प्रदर्शित हुआ है। पद्मपुराण पाताल खण्ड मे भी वर्णन है-"पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात्'' दहित तत्क्षणात्" इस श्लोक में "तत्क्षणात् पद द्वारा उसी का उल्लेख किया है। अप्रारव्ध पापहारित्व की बात ही क्या, साधनभक्ति जिस फलदान में समर्थ है, ज्ञानी साधकगण की जीवन्मुक्त दशा से भी जो नष्ट नही होते, उस प्रारब्धपाप को भी नष्ट कर देती है।? यथा—

"यन्नामधेय श्रवणानुकीर्तनाद् यत् प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।

Scanned with CamScanner

श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥
अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान यज्जिह्वाग्रे बर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥"
(भाः ३/३३/६-७)

भगवान् कपिल देव के प्रति माता देवहूति बोली—हे भगवन् कुक्कुरभोजी चण्डाल भी जब तुम्हारे नाम के श्रवण निरन्तर कीर्त्तन, प्रणाम और स्मरण के प्रभाव से तत्क्षणात् सोमयाग का अधिकारी हो जाता है, तब मेरे समान व्यक्ति जिसने तुम्हारा साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है, उसके भाग्य की बात और क्या कहूँगी?"

"अहो! जिसके जिह्वा के अग्र भाग पर तुम्हारा नाम विराजमान है, वह श्वपचकुलोत्पन्न होकर भी अत्यन्त पूज्यतम है कारण उसने समस्त तपस्या समस्त यज्ञ सर्वातीर्थ स्नान सदाचार एवं समग्र वेदाध्यन किया है।" "त्वन्नाम कीर्त्तने तप, आद्यन्तर्भूतम् अतस्ते पुण्यतमा इत्यर्थः। यद्वा जन्मान्तरे तैस्तपहोमादि सर्व्व कृतमस्तीत त्वन्नामकीर्त्तन महाभाग्योदयादव गम्यते इत्यर्थः।" (श्रीधर टीका) अर्थात् श्रीहरि की नामकीर्त्तन में तपस्या इत्यादि सव ही अन्तर्भुक्त है, इसलिए श्रीभगवन्नाम कीर्तनकारीगण ही—पुण्यवानगण में श्रेष्ठतम हैं। अथवा जन्मान्तर मे वे तपस्या होमादि सब ही करते है, श्रीहरि के नाम कीर्तन रूप महा सौभाग्योदय के फल से यही समझा जाता

Scanned with CamScanner

है।' श्रीकृष्ण ने स्वयं भी अपने प्रिय भक्त उद्धव के प्रति कहा है–"भक्तिः पुनाति मनिष्ठा श्वपाकानपि सम्यवात्" (भा: १२/१४/२१) मेरे प्रति निष्ठामयी भक्ति चण्डाल कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी जातिदोष से पवित्र कर देती है।"

इस स्थल पर जातिदोष हरण होता है, इसका कारण भक्ति का प्रारब्धहारित्व स्पष्ट ही प्रतीत होता है। क्योंकि प्रारब्ध कर्म ही इस देह का आरम्भक है। साधनभक्ति की प्रारब्ध पाप हेतु आधिव्याधि इत्यादि से विमुक्ति की बात का भी वर्णन है। जैसे–

"आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नाम कीर्त्तनात्।
तदैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम्॥"

(स्कन्दपुराण)

"जिसके स्मरण और नामकीर्त्तन के प्रभाव से आधि (मनःपीड़ा) और व्याधि (देहरोग) समूह ततक्षणात् विलय प्राप्त होते है, उन श्रीअनन्तदेव को प्रणाम करता हूँ।" प्रश्न हो सकता है कि यदि साधनभक्ति भक्त के आधि-व्याधि की नाशक ही है, तो विशिष्ट भजनशील भक्त के देह में भी रोग-शोक आदि का भोग क्यों देखा जाता है? श्रीमद् जीवगोस्वामि पाद इसके उत्तर में लिखते हैं–"उक्तष्ण नामकौमुदयां प्रारब्ध पाप हरत्वं क्वचिदुपासकेच्छा वसादिति" श्रीनामकौमुदी ग्रन्थ में लिखा है, उपासक की इच्छावश ही

Scanned with CamScanner

साधनभक्ति उनके प्रारब्ध-पाप का हरण करती है। यदि भक्त इच्छा ही न करें तो उनकी देह में प्रारब्ध भोग देखे जाते हैं। फिर कृपामय श्रीहरि भी किसी क्षेत्र में विशिष्ट भक्त के देह में प्रारब्ध रख ही देते है। इसलिए ही हम भक्त विशेष के देह में भी रोग-शोक आदि देख पाते हैं। किसी के मन में यह हो सकता है, सब प्रकार कर्मसाद गुण से भी जो नाश प्राप्त न हो यहाँ तक कि जीवन्मुक्त-ज्ञानीगण के ब्रह्मज्ञान से भी जो दुर्वार ऐसी महादु:खदायक प्रारब्ध पाप साधन भक्ति नाश करती है जानते हुए भी कौन विद्वान उसे इच्छापूर्वक रखकर रोग-शोकादि भोग करते हैं? फिर भक्तवत्सल, भक्त जन के दु:खहारी श्रीहरि भी भक्त के शरीर में स्वेच्छा से प्रारब्ध-पाप रखकर उसे क्यो दु:ख भोग कराते हैं? इसका कारण तो हमारे दुरधिगम्य है। वास्तव में भक्त और भगवान इनका अचिन्त्य स्वभाव महाश्चर्यमय है, इसलिए सामान्य वुद्धि के अगोचर है। किसी भगवद भक्त महापुरुष की अहैतुकी कृपारूप-अनिर्वचनीय सौभाग्य लाभ से किसी व्यक्ति में जब भक्तिशक्ति का आविर्भाव होता है, तब उस आविर्भाव के तारतम्यानुसार भक्त साधक का हृदय क्रमश: अन्याभिनिवेशशून्य होकर भक्ति सम्बन्धीय वस्तु में आविष्ट होता है। उस आवेश के फलस्वरूप भक्त की प्रारब्धकर्म जनित फलनिवृत्ति की इच्छा का उद्‌गम ही नहीं होता है। तब वे श्रीहरि के चरण में

Scanned with CamScanner

प्रार्थना-ज्ञापन करते है—

"नाथ योनि सहस्रेषु येषु येषु ब्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥"

(विष्णुपुराण)

"हे नाथ! मैं हजारों योनियों में जहाँ कही भी भ्रमण करूँ, उनमें ही मेरी आप में अव्यभिचारिणी भक्ति विद्यमान रहे।" इस क्षेत्र में भी प्रश्न हो सकता है, भक्त भले ही भक्तिरसोन्मादना से नाना योनियों में भ्रमण की इच्छा करें, किन्तु करुणामयी भक्तिदेवी एवं कृपामय श्रीभगवान् की तो उचित भक्त के अति दु:खदायक प्रारब्ध फल को विनाश साधन करना है। कारण इस सव दु:ख भोग के फल से भक्त के भजन की क्षति की भी तो सम्भावना है? इस प्रश्न का समाधन यह है कि साधक भक्त का प्रारब्ध का फल उसके हृदय स्थित भक्ति का विघातक न होकर बल्कि उसमे दैन्य का उद्गम (उत्पन्न) करता है जो भजन के अनुकूल ही होता है। फिर और श्री हरि की करुणा से दूसरों के निकट प्रारब्ध फल अतीव दु:ख जनक होते हुए भी भक्त के निकट सुखमय ही अनुभव होता है। पद्मपुराण में देखा जाता है—

"अरिर्मित्रं विषं पथ्यमधर्मो धर्म्मतां व्रजेत्।
सुप्रसन्ने हृषीकेशे विपरीते विपर्यय:॥"

"अर्थात् हृषीकेश सुप्रसन्न रहने से सभी विपरीत धर्म

Scanned with CamScanner

प्राप्त होते हैं। शत्रु मित्र के समान कार्य करें, विष अमृततुल्य हो जाये एवं अधर्म भी धर्मत्व प्राप्त हो।" किसी वस्तु के गुण से या व्यक्ति के गुण से शत्रु यदि शत्रुता त्याग कर वान्धव का कार्य करे तो कौन वुद्धिमान व्यक्ति उसको नाश करने की इच्छा करता है? विष यदि अमृत के समान स्वादु हो और अमरत्व प्रदान करे तो उसे कौन वर्जन करना चाहेगा? उसी प्रकार प्रारब्ध फलादि भक्त के भजन के सहायक होने के कारण भक्त की प्रारब्धनाश की इच्छा का उद्‌गम ही नहीं होता है फिर जो सब भक्त किसी विशेष कारण वश प्रारब्ध नाश की इच्छा करते है; उनके प्रारब्ध नाश हो जाते हैं—यही विद्वद वैष्णव अनुभव है। श्रील सनातन गोस्वामिपाद श्रीवृहद-भागवतामृत-(२/३/१६६ श्लोक) मे लिखते हैं —

"इच्छावशात् पापमुपासकानां, क्षीयेत भोगोन्मुखमप्यमुस्मात्।
प्रारब्धमात्रं भवतीतरेषां कर्मावशिष्टं तदवश्यभोग्यम्॥"

"सदा भगवन्नाम सेवा परायण उपासकगण के भोगोन्मुख प्रारब्धपाप समूह उनकी इच्छानुसार ही क्षयप्राप्त होते हैं। किन्तु उपासक-भिन्न ज्ञानी इत्यादि साधकगण के (कदाचित नाम संकीतन कर के भी) प्रारब्ध कर्म के अवशिष्ट बने रहते हैं, भोगने के अतिरिक्त प्रारब्ध कर्मों का नाश नहीं होता है।" इस श्लोक की टीका में श्रीलगोस्वामी पाद लिखते हैं—"इच्छावशात् तेषामेवेच्छाधीनत्वात् उपासकानामिच्छ यैव

Scanned with CamScanner

कर्म तिष्ठन्नश्येदपीत्यर्थः।" अर्थात् प्रारब्ध कर्मफल का नाश भक्तगण की इच्छाधीन है। उनकी इच्छा से प्रारब्धकर्म-फल उनके पास रह भी सकते हैं, नाश भी हो सकते हैं।

(७) "**पापवासना-हारित्व**" — साधन भक्ति साधक की पापवासना तक नाश कर देती है। जैसे—श्री अजामिल उपाख्यान में विष्णु दूत गण की उक्ति—

"तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानव्रतादिभिः।
नाधर्मजं तदधृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया॥"

(भाः ६/२/१७)

"तपस्या, दान और व्रतादि के द्वारा पापी के पाप समूह तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु उससे उत्पन्न हृदयमालिन्य पाप समूह के सूक्ष्म संस्कार विनष्ट नहीं होते। केवलमात्र श्रीहरि की पादपद्म सेवा-द्वारा ही वह विनष्ट होते हैं।" इस श्लोक की श्रील स्वामिपाद की टीका का अर्थ यह है कि दीप प्रज्ज्वालन द्वारा जिस प्रकार गाढ़ अंधकार राशि नष्ट होती है, उसी प्रकार एक बार उच्चरित हरिनाम से महापाप समूह नष्ट हो जाते हैं। दीप धारण कर रखने से जैसे पुनः अन्धकार नही आ सकता, उसी प्रकार रसना से अविरत नाम कीर्तन होते रहने से पापान्तर की उत्पत्ति नहीं हो पाती है। उस अविरत नामकीर्त्तन द्वारा पाप वासना समूह क्षय हो जाते हैं इसलिए हृदय का शोधन हो जाता

Scanned with CamScanner

है और पाप करने के संस्कार पर्यन्त विनष्ट हो जाते हैं। श्री अजामिल के नामाभास के द्वारा ही सर्व पाप क्षय हो गये थे और महापुरुषगण के दर्शन के कारण पापवासना का भी नाश हुआ था, श्रीपद्मपुराण में भी उल्लेख है—

"अप्रारब्धफलं पापं कूटं वीजं फलोन्मुखं।
क्रमेणैव विलीयन्ते विष्णु भक्तिरतात्मनाम्॥"

"विष्णु भक्तिरतचित्त-व्यक्तिगण के अप्रारव्धफल, कूट, बीज और फलोन्मुख पाप चतुष्टय क्रम से विलीन हो जाते हैं।" अप्रारव्ध फलं वक्ष्यमाणेभ्योऽन्यत , 'कूटं' वीजत्वोन्मुखं, वीजं प्रारव्धत्वोन्मुखं, 'फलोन्मुखं' प्रारब्धमित्यर्थः।"(श्रीजीवपाद)

यहाँ पर 'अप्रारब्धफलं' कहने से जिन सब पापों की बात कही जायेगी उन्हें छोड़कर अन्य पाप। (जो कूटत्वादि कार्यावस्था को प्राप्त नहीं हुए है, इस प्रकार की अनादि अनन्त पापराशि):,'कूट' कहने से वे पाप जो वीजत्व-लाभ के लिए उन्मुख हो रहे हैं (वीजभूत पाप के कारण जो पाप) 'वीज' शब्द से तात्पर्य जो प्रारब्धत्व-लाभ के लिए उन्मुख हो रहे हैं (पापवासना),'प्रारब्ध' कहने का अर्थ फलोन्मुख पाप (इस देहादि के आरम्भक) श्रीहरिभजन कारी व्यक्ति के यह सब क्रमशः विलीन हो जाते हैं। "क्रमस्तु कमलपत्र शतवेधइव एकक्षणमध्य एव ज्ञेयः" (श्रील विश्वनाथ) इस स्थल पर जो

Scanned with CamScanner

क्रम की बात कही गई है वह शत कमलपत्र-वेध के समान एक क्षण के मध्य ही जाननी चाहिए।

(८) "**अविद्याहरत्व**"— साधन भक्ति भक्त की अविद्यातक नाश कर देती है। श्रीमनु ने ध्रुव के प्रति कहा है—

"त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त,
आनन्दमात्र उपपन्न समस्तशक्तौ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या,
ग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाऽमिति प्ररूढ़म्॥"

(भा: ४/११/३०)

"हे ध्रुव! पंचम वर्ष की अवस्था में ही तुम उस सर्वान्तर्यामी, अनन्तस्वरूप विशुद्ध आनन्दमूर्ति, सर्वशक्तिमान श्रीभगवान में परमा भक्ति लाभ कर क्रमश: 'मैं और मेरा' " इस भाव में निवद्ध अविद्याग्रन्थि भेद करने में समर्थ होगे।' पद्म पुराण में भी अनुरूप उक्ति देखी जाती है—

"कृतानुयात्रा विद्याभिर्हरि भक्तिरनुत्तमा।
अविद्यां निर्दहत्याशु दावज्वालेव पन्नगीम्॥"

स्वायम्भुव मनु ने श्री ध्रुव महाशय से कहा—"हे वत्स! उत्तमा भक्ति जब भक्त हृदय में शुभागमन करती है तत्काल ही विद्या इत्यादि शुभवृत्तिगण उसके पीछे पीछे अनुगमन करती है। वह उत्तमाभक्ति, दावानल जिस प्रकार सर्पिणी को तत्क्षणात् भस्मसात् कर डालती है, उसी प्रकार अविद्या को

Scanned with CamScanner

पूर्ण रूप से दग्ध कर डालती हे।" दूसरी तरफ ज्ञान-योगादि मार्ग से साधकगण कभी भी इस अविद्याग्रन्थि से छुटकारा पाने में समर्थ नहीं होते है।

"यत्पादपंकज पलाश विलास भक्त्या,
कर्माशयं ग्रथित मुद ग्रथयन्ति सन्तः।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध,
स्त्रोतगणास्तमरणं भज वासुदेवम्॥"

"साधक भक्तगण भगवत् पादपद्म के अंगुलीदल में प्रतिक्षण वर्द्धनशील-कान्ति-विशिष्ट साधनभक्ति के द्वारा जिस प्रकार स्वकर्म सूत्र में गाँथे हुए कर्माशय (वासनामय अहंकार ग्रन्थि या अविद्या ग्रन्थि) को खोल देते हैं, अव्यक्त ब्रह्म विषय में मतियुक्त निर्वुद्धि ज्ञानीसाधकगण इन्द्रियों को रोकने की व्यर्थ चेष्टा करके भी कर्माशय का शोधन नहीं कर पाते हैं, इसलिए भगवान् श्रीवासुदेव का भजन करो।"

(६) **"सर्वसंतुष्टिहेतुत्व"**— श्रीभगवान का भजन करने से उसके प्रति सभी परम सन्तुष्टि-लाभ करते है। श्रीमन्नारद ने प्रचेतागण के प्रति उपदेश प्रदान के प्रसंग में कहा है—

"यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहारच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥"

(भाः ४/३१/१४)

Scanned with CamScanner

"वृक्ष के मूल मे जल से सींचने पर जिस प्रकार उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा, पल्लव इत्यादि तृप्ति एवं पुष्टि लाभ करते हैं, जिस प्रकार भोजन द्वारा प्राण की तृप्ति साधन से इन्द्रियादि तृप्त एवं पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना करने से सभी की आराधना हो जाती हैं।" वृक्ष के मूलदेश में जल देने से जिस प्रकार वह जल मूल द्वारा खिंच कर वृक्ष के स्कन्ध, शाखा, उपशाखा, पत्र-पुष्पादि में पहुँच कर उन्हें पुष्ट कर उनकी पुष्टि और वृद्धि करता है; उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना करने से समस्त भगवत् स्वरूप, सकल देवता, निखिल जीव जगत का तुष्टि-विधान हो जाता है। वृक्ष के मूल में जल न देकर यदि पृथक पृथक शाखा-उपशाखा आदि में जल दिया जाये तो वृक्ष में भी पुष्टि नहीं होती है और शाखा प्रशाखादि की भी पुष्टि नहीं होती हैं। उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना न कर अन्य देव-देवी की आराधना से किसी को भी सन्तोष-लाभ नहीं होता है।

यदि कोई मन में सोचता है कि वृक्ष के मूलदेश में जल देने पर भी जिस प्रकार शाखा प्रशाखा आदि में भी जल देते हुए देखा जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना कर अन्यान्य देव देवी की आराधना करना तो और भी उचित होगा, तो वैष्णव शास्त्र इसमें अनन्यभक्ति की हानि की बात क्यों कहता है? इसलिए ही श्लोक में द्वितीय द्रष्टान्त दिया

Scanned with CamScanner

है। आहार आदि द्वारा प्राण को परितुष्ट करने से स्वत: ही इन्द्रियादि की तृप्ति और पुष्टि साधित होती है। यदि कोई स्वतन्त्ररूप से चक्षु और कर्ण को भी आहार प्रदान करें तो व्यक्ति आँख से अन्धा और कान से वहिरा हो जायेगा। उसी प्रकार श्रीकृष्ण की आराधना कर अन्यान्य देव-देवी की आराधना करने से किसी का भी सन्तोष विधान नहीं होगा।

इस प्रसंग में ही श्रील जीवगोस्वामिपाद ध्रुव चरित्र से एक और द्रष्टान्त दे रहे हैं। श्रीमैत्रेय ने श्रीविदुर के प्रति कहा है—

"सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम्।
परिष्वज्याह जीवेति वाष्पगद्गदया गिरा॥
यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरि:।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम्॥"

(भा: ४/९/४६-४७)

"हे विदुर! श्रीध्रुव महाशय श्रीभगवान के दर्शन लाभ कर उनके ही आदेश से जब गृह लौट रहे थे, यह संवाद पाकर महाराज उत्तानपाद अपनी सुनीति और सुरुचि दोनों रानियों के साथ जब पथ में ध्रुव के साथ मिले, तो ध्रुव अपनी विद्वेषिणी विमाता सुरुचि के चरणों में प्रणत हुए, उन्होंने ध्रुव को दोनों हाथों में उठाकर आलिंगन कर वाष्परुद्ध कन्ठ से कहा; 'बत्स चिरंजीवी हो।' जिसके प्रति मैत्री इत्यादि गुणों के सहित श्री

Scanned with CamScanner

हरि प्रसन्न हो, जल जिस प्रकार स्वभावतः ही नीचे की ओर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार सर्व जीव ही उसके प्रति नत हो जाते हैं।" पद्मपुराण में भी देखा जाता है–

"येनार्च्चितो हरिस्तेन तर्पिताणि जगन्त्यपि।
रज्यन्ति जन्तवस्तत्र जंगमा स्थावरा अपि॥"

जो श्री हरि की अर्चना करते हैं वे निखिल-विश्व को ही परितृप्त करते हैं। स्थावर जंगम प्राणीमात्र ही उस के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं।

(१०) "**ज्ञानवैराग्यादि सर्वसदगुणहेतुत्वः**"– साधनभक्ति से ज्ञान वैराग्यादि निखिल सदगुण का उद्‌गम होता है। श्रीमद्‌भागवत में (५/१८/१२ श्लोक में) देखा जाता है–

"यस्याति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना,
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्‌गुणा,
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥"(भागः ५/१८/१२)

"श्रीभगवान में जिसकी अकिञ्चना या निष्काम भक्ति होती है, निखिल गुणों के सहित समस्त देवगण (इन्द्रियाधिष्ठाता रुद्रादि देवगण) उसमे नित्य निवास करते हैं। श्रीहरि में जिसकी भक्ति नहीं उसमें महदगुण कहाँ? क्योंकि उस व्यक्ति का चित्त सर्वदा मनोरथ के द्वारा असत्‌पथ या अनित्य-विषयसुख की ओर धावित होता है।" सर्व महागुणगण

Scanned with CamScanner

वैष्णव शरीरे। कृष्ण-भक्ते कृष्णेर गुण सकल सञ्चारे॥" (चै: च० मध्यलीला २२ वाँ परि:) ज्ञान-वैराग्यादि कभी भी भक्ति के अंग नहीं—श्रवण-कीर्त्तन आदि ही भक्ति के अंग हैं। तब भी साधक भक्त में ज्ञान-वैराग्यादि गुणावली स्वयं ही आ जाती है। जैसे—"ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अंग। यम-नियमादि बुले कृष्ण भक्त संग॥" (ऐ) श्रीमद् रूपगोस्वामी पाद ने लिखा है—

"ज्ञान वैराग्योर्भक्ति प्रवेशायोपयोगिता।
ईषत् प्रथममेवेति नाङ्गत्वमुचितं तयो:॥"

(भ: र: सि: १/२/२४८)

ज्ञान और वैराग्य भक्ति के अविरोधी होने से अर्थात् ब्रह्मज्ञान और फल्गुवैराग्य न होने से उनके भक्तिमार्ग में प्रवेश के निमित्त (अन्यवेश परित्याग मात्र से) किञ्चित उपयोगिता है। भक्तिमार्ग में प्रवेश हो जाने पर (साक्षात् श्रवण कीर्तनादि भजन में निरत होने से) फिर उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उसके द्वारा भक्ति का विच्छेद ही होता है। इसलिए ज्ञान वैराग्य भक्ति के कभी भी अंग नहीं हैं। फिर भी भक्ति देवी की सेवा के निमित्त भक्ति के उपयोगी तत्त्वज्ञान और युक्त वैराग्य का भक्त के हृदय में स्वयं ही आगमन घटित होता है, इसीलिए श्री चैतन्य चरितामृत में "यम-नियमादि बुले कृष्ण भक्त संग" यह बात कही गई है।

Scanned with CamScanner

(११) **"स्वर्गापवर्ग-भगवद्धामादि-सर्वानन्द हेतुत्व"**— साधनभक्ति स्वर्ग, अपवर्ग, भगवद्धामादि निखिल आनन्द का एकमात्र हेतु है। श्रीकृष्ण ने श्री उद्धव के प्रति कहा है—

"यतकर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयेभिरितरैरपि॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्गापवर्ग मद्धाम कथञ्चिद् यदि वाञ्छति॥"

(भा: ११/२०/३२-३३)

"हे उद्धव! निखिल सत्कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग दानधर्म एवं तीर्थयात्रा ब्रतादि के द्वारा जो कुछ फल लाभ होता है, मेरा भक्त भक्तियोग द्वारा वह सब लाभ कर लेता है। यद्यपि भक्त की कोई वाञ्छा ही नहीं होती है, फिर भी यदि कभी वह इच्छा करता है, तो स्वर्ग, मोक्ष यहाँ तक कि वैकुण्ठ लोक भी प्राप्त कर लेता है।" जिस प्रकार श्रीचित्रकेतु को स्वर्ग, श्रीशुकदेव को मायामुक्ति एवं श्री गोपकुमार को वैकुण्ठ लोक प्राप्ति की बात जानी जाती है।

वास्तव में शुद्धभक्त के चित्त में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई कामना ही नही होती है। जागतिक वस्तु की कामना की बात ही दूर, श्रीभगवान् उसको पञ्चविध मुक्ति हाथ से उठाकर देने पर भी वे उसे ग्रहण नहीं करते हैं।

Scanned with CamScanner

"सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न ग्रह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥"(भाः ३/२६/१३)

श्रीकपिलदेव वोले—"माँ! मेरे भक्तगण मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य (समान लोक मे वास), सार्ष्टि (समान-ऐश्वर्य), सारूप्य (समान रूपता),सामीप्य (समीप-में अवस्थान)एकत्व (सायुज्य)—यह पञ्चविध मुक्ति प्रदान करने पर भी ग्रहण नहीं करते हैं।" कारण भक्तगण जानते हैं—"भुक्ति-मुक्ति आदि वाञ्छा मने यदि रय। साधन करिलेओ प्रेम उत्पन्न ना हय॥" (चैः चः) इसलिए यहाँ पर केवल साधनभक्ति की यह महिमा ही प्रदर्शित हुई है कि साधन भक्ति के द्वारा सभी प्रकार के सुख और साधन सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है।

(१२) स्वतः ही परमसुखदान हेतु साधन भक्ति की कर्म-ज्ञानादि साधन साध्य वस्तु की हेयत्व कारिता—अर्थात् साधनभक्ति स्वभाव से ही परमसुख दान करती है इसलिए भक्ति के पास कर्म से आरम्भ कर ज्ञान पर्यन्त जो भी साधन और साध्य वस्तु है सभी निश्चित रूप से हेय या तुच्छ है। श्रीउद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति इस प्रकार है—

"न पारमेष्ठयं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं।
न योगसिद्धीर पुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥"

(भाः १२/१४/१४)

Scanned with CamScanner

"हे उद्धव! मुझे मे समर्पित चित्त-व्यक्ति मुझे त्याग कर ब्रह्मपद इन्द्रपद, सार्वभौम पद, रसातल का आधिपत्य, अणिमादि योगसिद्धि अथवा मुक्तिलाभ की इच्छा भी नहीं करते हैं।"

श्रीमुचुकुन्द की उक्ति से भी देखा जाता है—

"न कामयेऽन्यं तब पादसेवनादकिञ्चन प्रार्थ्यतमाद् वरं विभो।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम्॥"

(भा: १०/५१/५६)

अर्थात् "हे विभो! अकिञ्चनगण के प्रार्थनीयतम आप के पादपद्म सेवन के अतिरिक्त अन्य किसी वर की प्रार्थना नहीं करता हूँ। क्योंकि कौन वुद्धिमान व्यक्ति अपवर्गदाता अथवा भक्तिप्रदाता ('अपवर्गो भक्ति:' वै: तो: टीका) आपकी आराधना कर अपने बन्धन के कारण अन्य वर की प्रार्थना करेगा?" साधक साधनभक्ति रस मदिरा का जितना ही आस्वादन करें, उतना ही उनका चित्त अन्य अभिनिवेश-शून्य होकर एकमात्र भक्तिसाधन मत्तता से प्रमत्त हो उठेगा तब हरिभजन को छोड़ अन्य सब साध्य साधन उसके निकट अतिशय हेय या तुच्छातितुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। स्वयं भगवान श्रीमन महाप्रभु परतत्व की चरमसीमा होकर भी जीव शिक्षा के निमित्त जीवतत्व की भूमिका में खड़े होकर शिक्षाष्टक में प्रार्थना कर रहे है—

Scanned with CamScanner

"न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥"
"धन जन नाहि मागों कविता सुन्दरी।
शुद्धभक्ति देह मोरे कृष्ण! कृपा करि॥" (चै: च:)

अनन्तर साक्षात् साधनभक्ति के निर्गुणत्व प्रतिपादन निमित्त श्रीकृष्ण श्री उद्धव के प्रति एक श्लोक में उनमें अर्पित कर्म से आरम्भ कर अन्यान्य सर्व कर्मों के ही सगुणत्व का वर्णन कर रहे हैं यथा–

"मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत्।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम्॥"(भा: ११/२५/२३)

"हे उद्धव! मुझ में अर्पित नित्य–नैमित्तिकादि कर्म (भगवद् र्पण को छोड़ कर सर्व कर्मो का वैफल्य जाना–जाता है।) एवं फलाभिसन्धि शून्य कर्म सात्त्विक, फल संस्कार युक्त कर्म राजस एवं हिंसादि युक्त दम्भ- मात्सर्यादि कृत कर्म तामस हैं।'' इसके बाद शुद्धभक्ति को छोड़ अन्यान्य अनुष्ठान समूह का त्रिगुणान्तर्गतत्व वर्णन कर चार श्लोको में शुद्धभक्ति के निर्गुणत्व वर्णन कर रहे हैं।

(१३) "ज्ञान का सगुणत्व और निर्गुणत्व"–

"कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत्।
प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्॥"
(भा: ११/२५/२५)

Scanned with CamScanner

"कैवल्य या देहादि-व्यतिरिक्त आत्मविषयक ज्ञान (जीवब्रह्म का अभेद ज्ञान), 'सात्त्विक,' देहादि विषयक वैकल्पिक (सन्देहयुक्त) ज्ञान 'राजस,' बालक मूकादि व्यक्तिगण के ज्ञानसदृश प्राकृत ज्ञान ही 'तामस' एवं परमेश्वर स्वरूप मेरे विषय का ज्ञान ही 'निर्गुण,' है।" श्रीभगवान के कृपापरिमल-पात्र-महदगण के संग और कृपा ही भगवद्विषयक ज्ञान का एकमात्र कारण है, इसीलिए यह निर्गुण कैवल्य ज्ञान या जीवब्रह्म के अभेद ज्ञान की अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण है। श्रील प्रह्लाद महाशय के वर्णन से वही जाना जाता है—

"नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं, निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥"
(भाः ७/५/३२)

"निष्किञ्चन (निरस्त-विषयाभिमान) परम- महतगण के पद रज से जब तक इन्द्रियतर्पण शील व्यक्ति अभिषिक्त नहीं होते हैं, तब तक उनकी मति भगवान श्री उरुक्रम के पादपद्म के स्पर्श का लाभ नहीं प्राप्त कर पाती है। जिसके द्वारा समस्त अनर्थों का नाश होता है।"

(१३) (क) इसलिए सत्संग की महिमा-वर्णन-प्रसंग में कहा गया है —

"तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥" (भाः १/१८/१३)

Scanned with CamScanner

श्री सूत के प्रति शौनकादि ऋषिगण ने कहा है– ''भगवत्संगी के (महत् वैष्णवगण के) निमेषमात्र काल संग के सहित जब स्वर्ग की, यहाँ तक कि मोक्ष की भी तुलना नहीं की जाती है, तब मरणधर्मी मानवगण की तुच्छ राज्यभोगादि सुख के साथ जो तुलना नहीं है यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है।'' "निर्गुणावस्थातोऽप्यधिकत्वात् परम निर्गुण एव" (भा: स: १३४ अनु:) उल्लिखित शौनक वाक्य के द्वारा सत्संग की निर्गुणावस्था की अपेक्षा भी आधिक्य के कारण ही जो 'परमनिर्गुण' कहा गया है। 'साधुसंग' 'साधुसंग' 'सर्व्वशास्त्रे कय! लव-मात्र साधु संगे सर्व्व-सिद्धि हय।।'' (चै: च:) यहाँ पर सर्व्वसिद्धि का अर्थ श्रीकृष्ण प्रेम सिद्धि ही जानना होगा इसलिए ही कहा गया है–''कृष्णभक्ति-जन्ममूल हय साधुसंग। कृष्णप्रेम जन्मे तेहों पुन मुख्य अंग।।''(चै.च.)

"भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागम:।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मति:॥"

(भा: १०/५१/५४)

श्री मुचुकन्द ने श्रीभगवान की स्तुति के प्रसंग में कहा है–'हे अच्युत! इस संसार में भ्रमण करते करते जब किसी का संसार से उद्धार होने का समय होता है तो उसको भगवत भक्त का संग लाभ होता है, तब साधुगण की एकमात्र गति एवं कार्यकारण नियन्ता आप में उसकी रति-मति उत्पन्न होती

Scanned with CamScanner

है।" इस श्लोक की तोषणी टीका का तात्पर्य यह है कि इस श्लोक में कारण से पहले ही कार्य का उल्लेख हुआ है। अर्थात् जब सत्संग होता है तव संसारी मानव का संसारान्त होता है, इस प्रकार न कह कर जब संसारान्त होता है, तभी सत्संग होता है, इस प्रकार कहा गया हैं। इससे अतिशयोक्ति अलंकार का चतुर्थ भेद प्रदर्शित हुआ है। जिससे कार्य की शीघ्रकारिता के निमित्त कारण के पहले ही कार्य का उल्लेख होता है। अर्थात् सत्संग होने से श्रीभगवान में रति अव्यभिचारी रूप से उपस्थित है। यदि प्रश्न उठता है कि श्रीहरि की कृपा के विना तो सत्संग भी नहीं होता है, इसलिए श्रीहरि की कृपा ही मानव के संसार नाश का आदि कारण हो। इसके उत्तर में कहा है— 'स्वेच्छामयस्य' 'स्व' अर्थात् निजजन भक्त की इच्छा से ही श्रीहरि की सर्व-इच्छा का प्रवर्तन होता है, स्वतन्त्ररूप से कभी भी नहीं। अतएव सत्संग ही भक्ति लाभ का आदि और मूलकारण है। इसलिए ही सत्संग को 'परमनिर्गुण' कहा गया है। अतएव भगवत्ज्ञान का निर्गुणत्व स्वतः सिद्ध है। भगवत् विषयक सुख का भी निगुणत्व वर्णित हुआ हैं। श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा है —

"सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थंतु राजसम्।
तामसं मोहदैन्योत्थं निगुर्णं मदपाश्रयम्॥"

(भा: ११/२५/२६)

Scanned with CamScanner

"आत्मानुभवजनित सुख सात्त्विक, विषयभोग जनित सुख राजस, मोह दैन्य जनित सुख तामस एवं मेरी संकीर्तन सेवादि, द्वारा जो सुख समुत्पन्न है--वही निर्गुण है।"

"आत्मोत्थं त्वं-पदार्थज्ञानोत्थं पदमाश्रयं मत्कीर्तनाद्युत्थम्।"

(श्रीविश्वनाथ)

आत्मोत्थ सुख कहने का अर्थ जीव का स्वरूपानुभवजनित-सुख ही सात्त्विक सुख एवं तत्पदार्थ या भगवदानुभव-जनित सुख ही निर्गुण है। उल्लिखित टीका में श्रील विश्वनाथ कहते है--श्रीकृष्ण के नामकीर्तनादि जनित सुख ही भगवदानुभव अतएव निर्गुण। नाम और नामी अभिन्न-कहे जाने की इच्छा से नामरसास्वादन ही भगवदानुभव है। कृष्ण नाम कृष्ण गुण कृष्णलीलावृन्द। कृष्णेर स्वरूप सम सब चिदानन्द।। (चै: चे:) "कृष्ण नामे ये आनन्द सिन्धु आस्वादन। ब्रह्मानन्द तार आगे-खातोदक सम॥"(वही) यद्यपि 'मत्कीर्तनादि' इस आदि शब्द से श्रवण-स्मरणादि भक्ति अंग को भी समझा जाता है, फिर भी नाम कीर्तन के प्राधान्य के कारण नाम कीर्तन का ही उल्लेख किया गया है। यथा--

"भजनेर मध्ये श्रेष्ठ-नवबिध भक्ति।
कृष्ण प्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सर्व्वश्रेष्ठ-नामसंकीर्तन।
निरपराध नाम हैते हय प्रेम धन॥" (चै: च:)

Scanned with CamScanner

(१३-ख) "श्रवणादि लक्षणक्रियारूपा, साधन-भक्ति का निर्गुणत्व"—श्रवणादि क्रिया रूपा साधन भक्ति भी जो निर्गुण है यह शौनकादि ऋषिगण के प्रति श्री सूतमुनि के वाक्य से जाना जाता है।

"शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेव कथारुचिः।
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थ निषेवणात्॥"

(भाः १/२/१६)

" हे विप्रगण ! पवित्रतीर्थ की (श्रीवृन्दावन धामादि की) सेवा द्वारा प्रायः महापुरुषगण की सेवा करने का सौभाग्य उपस्थित होता है, उस सेवा से श्रीहरि कथा में श्रद्धायुक्त श्रवणेच्छु जन का श्रीकृष्ण कथा में रुचि की सम्भावना होती है।" इस श्लोक की व्याख्या के प्रसंग में श्रीजीवगोस्वामीपाद लिखते है—किसी अन्य कार्य के उद्देश्य से भी पवित्रतीर्थ में भ्रमण कारी मानव का तीर्थ-सेवन के उद्देश्य से समागत अथवा उस पवित्रतीर्थ में अवस्थित महापुरुषगण के दर्शन, स्पर्श और सम्भाषणादि रूप सेवा विना यत्न के ही पूरी हो जाती है। उन महापुरुषगण के दर्शन और स्पर्श आदि के प्रभाव से उनके आचरण मे श्रद्धा अर्थात् विश्वास का जन्म होता है। उन महापुरुष के स्वभाव सिद्ध परस्पर भगवत्कथा से 'ये क्या कह रहे है श्रवण करेंगे, इस प्रकार की इच्छा का उदय होता है। तब उन महापुरुषगण के श्रीमुख से निकली श्रीहरिकथा श्रवण

Scanned with CamScanner

से—उस भगवत कथा में रुचि का भी आविर्भाव होता है। इस रूप में वर्हिमुख मानव की पवित्रतीर्थ की सेवा से श्रीहरिकथा में रुचिलाभ की सम्भावना हे। कारण यह है कि श्रीहरिकथा महापुरुषगण के श्रीमुख से श्रवण करने से ही अतिशीघ्र कार्यवाही करती है और रुचि की उदगमकारिणी हो जाती है। कारण-स्वरूप महत् का संग ही जब परम निर्गुण है, तब उसके कार्य स्वरूप श्रवणादि क्रियारूपा साधनभक्ति भी जो निर्गुण है— इसमें और किसी को भी किसी प्रकार के सन्देह का अवकाश ही नहीं रह सकता है। श्रील जीवगोस्वामिपाद ने "कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानम्" इत्यादि श्लोक की व्याख्या में भगवत्-विषय ज्ञान के निर्गुणत्व का वर्णन कर प्रसंगवश सत्संग, श्री हरिनाम कीर्तनादि सुख, एवं श्रवणादि क्रियारूपा-भक्ति के निर्गुणत्व का ही वर्णन किया है।

(१४) **"भगवत सम्बन्धयुक्त वासरूपा भक्ति का भी निर्गुणत्व"**—श्रवण-कीर्तन रूपा भक्ति जो निर्गुण है, इस विषय में तो कोई संशय ही नहीं है, श्रीकृष्ण से उसका सम्बन्ध है इस कारण भगवन्मन्दिर में वासरूप भक्ति का भी निर्गुणत्व वर्णन कर रहे हैं—

"वनं तु सात्त्विको वासो ग्राम्यो राजस उच्यते।
तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम्॥"

(भा: ११/२५/२५)

Scanned with CamScanner

अर्थात् ''वनवास सात्त्विक, ग्राम्यवास ही राजसिक, द्यूत कीड़ादि स्थल पर वास तामसिक एवं मेरे निकेतन या मन्दिर में वास निर्गुण है।'' इस स्थल का तात्पर्य यह है कि वाणप्रस्थ आश्रमीगण की वनसम्वन्धिनी वासक्रिया सात्विक, गृहस्थगण का ग्राममे वास राजस, दुराचारीगण का जुआ खेलने का स्थान, मद्यपान, मिथ्या प्रवञ्चना आदि पर वास तामस है। भगवत सेवापरायण भक्तगण का भगवन्मन्दिर में वास निर्गुण है। इस स्थल पर वन, ग्राम, द्यूतसदन इत्यादि में वास क्रिया के साथ एकाधिकरणता प्रकाशित की गई है। जिस प्रकार-''आयुर्घृत मिति'' घृत ही आयु है। किन्तु घृत ही तो आयु नहीं ही है। घृत के भोजन से आयु-वृद्धि होती है। कार्य आयु को कारण घृत के सहित अभेदभाव से इस प्रकार कहा गया है। उसी प्रकार यहाँ पर वन में वास को सात्त्विक न कहकर वन और वास क्रिया को एक में ही समाहित किया गया है। वृक्षों के समूह का नाम वन है, यह वृक्ष समूह रजः तमोगुण प्रधान, फिर भी निर्जन होने के कारण जो वास करते हैं उनके सत्त्वगुण के वर्द्धक हैं। उसी प्रकार ग्राम में वास करने से नानाविध भोगवासना रूप रजोगुण के उद्भव होने से ग्राम के वास को राजस कहते हैं। उसी प्रकार द्यूतसदनादि स्थान पर वास को तामस कहा गया है, यहाँ पर भी वास क्रिया ही लक्षणीय है। श्रीभगवान ने उद्धव के प्रति कहा—किन्तु मेरा

Scanned with CamScanner

निकेतन ही निर्गुण है। सच्चिदानन्द विग्रह श्रीभगवत् सम्बन्ध-माहात्म्य से स्पर्शमणि के स्पर्श से जेसे लौह सुवर्ण में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार श्रीहरि के अधिष्ठान के कारण ईंट आदि निर्मित मन्दिर ही निर्गुणत्व को प्राप्त होता है। वहाँ पर वास करने से निगुर्ण भाव को वृद्धि होती है। यह भगवत्भक्तगण ही भक्ति चक्षु से दर्शन एवं भजनबल से अनुभव करने में समर्थ हैं।

(१५) भगवद्विषयणी निखिल क्रिया का ही निर्गुणत्व—

"सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागान्द्धो राजसः स्मृतः।
तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुण मदपाश्रयः॥"

(भाः ११/२५/२६)

श्रीकृष्ण ने कहा—हे उद्धव! अनासक्त भाव से जो व्यक्ति कर्म करता है वह कर्त्ता सात्त्विक, जो कर्त्ता फललाभ में अभिनिविष्ट वह राजस, जो अनुसन्धान-शून्य होकर कर्म करे वह तामस और जो मेरे आश्रित या शरणागत वह निर्गुण है।" इस स्थल पर भी क्रिया में ही इस श्लोक का तात्पर्य निहित है, ऐसा समझना होगा। अर्थात् क्रिया ही सात्त्विकी, राजसी और तामसी, क्रिया के आश्रयभूत द्रव्य नहीं। इस कारण सात्त्विकादि क्रिया के कर्त्ता के शरीरादि सत्त्व, रजः तमोगुण के ही विकार हैं। श्रीहरि का भजनशील व्यक्ति निर्गुण है। श्रीशुकदेव महाराज ने परीक्षित के प्रति कहा है —

Scanned with CamScanner

"हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत्॥"

(भाः १०/८८/५)

"हे राजन्! श्रीहरि साक्षात् निर्गुण, प्रकृति के अतीत, पुरुषोत्तम सर्वदृष्टा और साक्षी उनकी आराधना करने से मानव भी निर्गुण हो जाता है।" श्रीचितकेतु ने भी श्रीभगवान की स्तुति के प्रसंग में कहा—"ज्ञानात्मन्य गुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि" (भाः ६/१६/३६) "हे प्रभो! गुण समूह से जीव का संसार एवं सुख-दुःखादि द्वन्द्व भाव घटित होता है। आप गुणमय पदार्थ से भिन्न निर्गुण होने के कारण चिन्मय है। आपके भजन से भजनकारी का ही निर्गुणत्व लाभ हो जाता है।" इस श्लोक की व्याख्या में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद लिखते हैं—"रसकूपपतितं वस्तु यथा रसएव भवेदेव त्वयि प्रविष्टाः कामधियोऽपि चिन्मयो भवतीति" अर्थात् रसकूप में पतित वस्तु जिस प्रकार रसमय हो जाती है, उसीप्रकार कामना वासनायुक्त वुद्धि भी आप में प्रवेश होने से चिन्मय हो जाती है।

(१६) भगवद्विषयिणी श्रद्धा का भी निर्गुणत्व—

भगवत् सम्बन्धिनी क्रियामात्र का ही निर्गुणत्व-वर्णन कर अब भगवत्सम्बन्धिनी क्रियाप्रवृत्ति की हेतुभूता भगवद्विषयिणी श्रद्धा का भी निर्गुणत्व वर्णन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा—

Scanned with CamScanner

"सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी।
तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा॥"

"हे उद्धव! अध्यात्मतत्व विषय में श्रद्धा को सात्त्विकी, कर्मानुष्ठान में श्रद्धा को राजसी, दूसरे धर्म में श्रद्धा को तामसी और मेरी सेवा के विषय में श्रद्धा को निर्गुणा कहते हैं।" श्रीगीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा—

"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥"

(गीता-१२/२)

"जो परा श्रद्धा के सहित मेरे श्यामसुन्दर-आकार में मनोनिवेश-पूर्वक सतत अनन्यभक्ति के साथ मेरी उपासना करते है, वे योगीगण के मध्य श्रेष्ठ है—यह मेरा अभिमत है।" परया गुणातीतया श्रद्धया (श्रील विश्वनाथ-टीका) यह सब श्रीभगवान की श्री मुखवाणी द्वारा प्रमाणित है। भगवान सम्बन्धी- सब ही गुणातीत है और उसे छोड़कर सव त्रिगुणमय है। इसलिए ही कहा गया—

"अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः।
धर्म्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम्॥"

(भाः ६/२/२४)

अजामिल यमदूतगण के मुख से वेदत्रय-प्रतिपाद्य अशुद्ध सगुण धर्म एवं विष्णुदूतगण के मुख से शुद्ध निर्गुण

Scanned with CamScanner

भागवत धर्म सुन कर श्रीहरि के माहात्म्य से अवगत होकर उनके प्रति भक्तिमान हुए।'' यहाँ पर 'वेद' से तात्पर्य कर्मकाण्डीय वेद ही समझना होगा।

(१७) ''**साधनभक्ति का श्रीभगवत स्वरूप शक्ति-वोधक- स्वयं प्रकाशकत्व**''—राजर्षि भरत महाशय के चरित्र वर्णन के प्रसंग में श्रील शुकदेव मुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा है—

"यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुण्याय,
योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय।
नारायणाय हरये नम इत्युदारं,
हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार॥"

(भा: ५/१४/२५)

श्रवण-कीर्त्तनात्मिका साधनभक्ति जो श्रीभगवान की स्वरूपशक्ति की वृत्तिविशेष है, अपने स्वयं-प्रकाश धर्म के द्वारा श्रीभागवत आदि शास्त्र में सुस्पष्ट भाव से ही प्रकाशित हो रही है। महाभागवत श्रील भरत महाशय मृग शिशु से आसक्तिवशत: द्वितीय जन्म में मृगदेह प्राप्त किये थे। उस मृगदेह के त्याग के समय पूर्व जन्म के भक्ति संस्कार वशत: उच्चस्वर से बोले थे—''जो यज्ञस्वरूप, यज्ञादि के फलदाता, जो विधि पूर्वक धर्मानुष्ठान करते है, जो अष्टाँग योगस्वरूप है, आत्मानात्म विवेक के जो मुख्य फलस्वरूप है और जो

Scanned with CamScanner

माया के नियन्ता, जो कर्म, ज्ञान, देवताकाण्ड में इस प्रकार प्रतिपादित हैं, उन श्री हरि को प्रणाम करता हूँ'' इस प्रकार कहते कहते उन्होंने मृगदेह का त्याग किया था।

इस स्थान पर विचारणीय विषय यह है कि एक तो उस समय मृत्युयन्त्रणा से कातर, फिर मृगदेह में इस प्रकार की वाक्य स्फूर्ति होना सर्वथा ही असम्भव है। कारण पशु, पक्षी आदि की जिह्वा में अपनी देहानुरूप ध्वनि करने की शक्ति एवं सम्भावना है, हरि कृष्ण इत्यादि वर्ण उच्चारण करने की सम्भावना नहीं है। यह तो एकमात्र मनुष्य देह में ही सम्भव है तो भी मृत्युकाल में श्रीभरत महाशय ने मृगदेह में भी इस प्रकार नाम उच्चारण कर देहत्याग की थी। इसके द्वारा सहज में ही समझा जाता है—श्रवण-कीर्त्तन लक्षणा साधनभक्ति जिह्वा-कर्णादि इन्द्रियों की अपेक्षा न रखकर उन इन्द्रियों पर स्वयं ही स्फुरित या प्रकाशित होती है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध में भक्त गजराज के ग्राहग्रस्त दशा में दीर्घ श्रीहरि स्तुति के विषय वर्णित है। भक्ति श्रीहरि की स्वरूपशक्ति की वृत्तिविशेष है अतएव स्वप्रकाशतत्व होने के कारण ही यह सम्भव है।

(१८) ''भक्ति का परम सुखरूपत्व''— भक्ति साधन दशा और सिद्धदशा दोनों में ही परमसुख स्वरूपा हैं। साधनभक्ति के अनुष्ठान जो परम सुखस्वरूप हैं, इस विषय में श्रीपाद

Scanned with CamScanner

सूतमुनि शौनकादि ऋषिगण के प्रति कह रहे है–

"अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्म प्रसादनीम्।।"

(भा: १/२/२२)

इसके पूर्व श्रीपादसूतमुनि ने शौनकादि के प्रति सुख के साथ साधुमुख से श्रवण-कीर्त्तनादि साधनभक्ति के अनुष्ठान क्रम में अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और प्रेमप्राप्ति, भगवद्दर्शन, भगवन्माधुर्यानुभव पर्यन्त वर्णन किया है। उसके बाद इस श्लोक में कहा है–अतएव हे मुनिगण! इस कारण से ही सुविज्ञजन परम आनन्द के साथ भगवान श्री वासुदेव की नित्य ही मन:शोधनी भक्ति करते हैं। इस श्लोक में श्रीपाद सूतमुनि ने "परमया मुदा" शब्द का उल्लेख कर जिस प्रकार भक्ति अनुष्ठान का परमानन्द धर्म दिखाया है, उसी प्रकार (भा: १/१८/१२) श्री शौनकादि ऋषिगण ने भक्ति की आनन्दरूपता प्रकाशित की है। यथा–

"कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्।
आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु॥"

शौनकादि साठ हजार ऋषियों ने नैमिषारण्य में हजार वर्ष तक चलने वाला एक यज्ञ आरम्भ किया था। श्रीसूत मुनि के समागम से उनके श्रीमुख से श्रीभद्भागवत कथा श्रवण करके ही बोले, हे सूत! अनिश्चय-फलदायक इस

Scanned with CamScanner

यज्ञानुष्ठानरूप कर्मकाण्ड में धुएँ से हमारा देह मैला या विवर्ण हो गया है। अब आप हमें श्रीगोविन्द पादपद्म विगलित मकरन्दरूप- सुधारस अर्थात् श्रीहरिकथामृत का पान करा रहे हैं। इस श्लोक की श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद की व्याख्या का अर्थ इस प्रकार—यज्ञानुष्ठान का फल 'अनाश्वास' अर्थात अविश्वसनीय जिसमें विघ्नवाहुल्य के कारण फलप्राप्ति की कोई निश्चयता नहीं है। इसके द्वारा साधनभक्ति का साधन और फल इस उभय स्थल पर ही निश्चयता हेतु इस पर पूर्ण विश्वास और निर्भर रहा जा सकता है—यही ध्वनित हुआ। 'धूम्र धूम्रात्मा' इस समासवद्ध पद का व्यासवाक्य यथा धुएँ के द्वारा धूम्र या विवर्ण आत्मा अर्थात् देह और चित्त जिसके। (कर्म में षष्ठी विभक्ति) इसका तात्पर्य- देह यज्ञ के धुएँ से विवर्ण और चित्त कर्मवासना से विवर्ण या मलिन—इस प्रकार की हमारी दशा में आपने हमें श्रीहरि के पादपद्म यशोमकरन्द रस का पान कराया। यहाँ पर यज्ञ कहने से अन्य कर्मान्तर को भी समझना होगा उसी प्रकार श्रीहरि के यश-श्रवण की तरह ही अन्यान्य भक्ति अंगों को जानना होगा।

यहाँ पर श्रीसूतमुनि की उक्ति और श्री शौनाकादि मुनिगण की उक्ति से साधनभक्ति की आनन्दरूपता सुस्पष्टरूप से प्रकाशित हुई है। साधन दशा से ही भक्ति जब आनन्दस्वरूपा है तब सिद्धिदशा से भक्ति परिपूर्ण आनन्दस्वरूपिणी होगी यह

Scanned with CamScanner

कहने की आवश्यकता ही नहीं है। इसलिए श्री वैकुण्ठनाथ ने श्रीदुर्वासा ऋषि के प्रति कहा है—

"मत्सेवया प्रतीतं ते च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवाया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥"

(भा : ६/४/६७)

निष्काम भक्तगण मेरी सेवा के द्वारा अनायास प्राप्त सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति भी पाने की इच्छा नहीं करते हैं क्योंकि वे सेवानन्द में ही पूर्णकाम हो जाते हैं। इसलिए वे काल-विनाश्य स्वर्गादि सुख की जो इच्छा नहीं करते हैं यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है। स्वर्गादि सुख को काल-विनाश्य कहने से श्रीभगवत् सेवारूपा-भक्ति जो काल-विनाश्य नहीं है यही सूचित हुआ। इससे भक्ति का निगुर्णत्व भी सुसिद्ध हुआ। अविनाशी सालोक्यादि मुक्ति से भी सेवा में अधिक आनन्द है इस कारण ही भक्तगण मुक्तिचतुष्टय की अभिलाषा नहीं करते हैं। इससे श्रीभगवद्भक्ति का परमानन्दरूपत्व भी भली प्रकार प्रकाशित हो गया है। मुक्ति चतुष्टय के विषय में श्रीमद्रूप गोस्वामी पाद ने लिखा है—

"सुखैश्वर्योत्तरा सेयं प्रेमसेवोत्तरेत्यपि।
सालोक्यादिर्द्विधा तत्र नाद्या सेवाजुषां मता॥
किन्तु प्रेमैक माधुर्य्यजुष एकान्तिनो हरौ।

Scanned with CamScanner

नैवार्गीकुर्व्वते जातु मुक्तिं पञ्चविधामपि॥
तत्राप्येकान्तिनां श्रेष्ठा गोविन्दहृत मानसाः।
येषां श्रीश-प्रसादोऽपि मनो हर्न्तु न शक्नुयात्॥"
(भः रः सिः १/२/५६-५८)

सालोक्यादि मुक्ति दो प्रकार की है—(१) सुखैश्वर्योत्तरा (२) प्रेमसेवोत्तरा। सुखैश्वर्योत्तरा मुक्ति सेवापरायण-जनगण की आदरणीय नहीं है। "सालोक्यादि चारि यदि हय सेवाद्वार। तवे कदाचित् भक्त करे अंगीकार॥" (चैः चः) किन्तु श्रीहरि के एकान्ति-जनगण (श्रीउद्धव, पाण्डव, हनुमान इत्यादि) प्रेमसेवोत्तरा मुक्ति की भी वाञ्छा नहीं करते हैं। वे तो सेवानन्द में ही निरन्तर मगन रहते हैं। नाना-अवतारों के एकान्ति भक्तगण के मध्य श्रीनन्दनन्दन द्वारा हृत-चित्त महाजनगण ही श्रेष्ठ हैं, क्योंकि परव्योमनाथ महानारायण का अनुग्रह भी उनके मन का हरण नहीं कर पाता है। (श्रीवृहद्भागवतामृत के गोपकुमार ही इसके दृष्टान्त हैं।)

(१६) **"श्रीभगवत् विषयक रति प्रदत्व"**—साधनभक्ति जो श्रीहरि में रति प्रदान करती है, यह श्री प्रह्लाद महाशय की असुर वालकगण के प्रति उक्ति से जाना जाता है—

"एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे।
वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम्॥"
(भाः ७/७/३३)

Scanned with CamScanner

"हे भ्रातृगण! श्रीगुरुशुश्रूषा इत्यादि भजनांगो का अनुष्ठान करते करते काम-क्रोधादि षड्वर्ग अथवा इन्द्रियादि के वेग के शान्त होने से लय-विक्षेपादि शून्य-हृदय में श्रीभगवान में साधनभक्ति के अनुष्ठान द्वारा परमेश्वर श्रीवासुदेव में रतिलाभ की जा सकती है।" "साधनभक्ति हैते हय रतिर उदय। रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय।" (चै. च.)

"तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाश्रृणवं मनोहराः।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विश्रृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः॥"
(भाः १/५/२६)

श्रीनारद ने व्यासदेव के प्रति कहा—"हे मुनिवर मैं उन ऋषिगण के आश्रम में उनके ही अनुग्रह से प्रतिदिन मुनिगण जो मनोहर-कृष्ण कथा-कीर्तन करते, उसका प्रत्येक पद बिशेष मनोयोग के साथ श्रवण करता, उससे मेरी प्रियश्रवा श्रीहरि में रति उदय हुअी।" इत्यादि बहुत से प्रमाणों से साधनभक्ति की श्रीभगवान में रतिप्रदान-सामर्थ्य प्रचुरतर भाव में उल्लिखत है। प्रश्न हो सकता है कि—"अस्त्वेवमङ्ग भजतां भगवान् भजतं मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्ति योगम्।" (भाः ५/६/१८) अर्थात् "भगवान मुकुन्द भजन कारीगण को मुक्ति दान करते हैं किन्तु कभी प्रेमभक्ति दान नहीं करते हैं।" इस भागवत् वाक्य से साधनभक्ति के द्वारा श्रीभगवान में रतिलाभ नहीं की जा सकती है—इस प्रकार की आशंका का

Scanned with CamScanner

उदय होता है यह संशय किन्तु विना विचार के ही हो रहा है, कारण मूल श्लोक में 'कर्हिचित्' पद का उल्लेख है —'कर्हिचिदपि' पद का उल्लेख नहीं है। कारण व्याकरण के जानकर ही जानते है कि—"चित्" और "चन" यह दो प्रत्यय ही असाकल्य अर्थ में ही प्रयोग होते हैं। अमरकोष में देखा जाता है—"असाकल्ये तु चिच्चनौ" अर्थात् असर्वकाल, असर्वदेश असर्वपात्र में ही "चित्" और "चन्" प्रत्यय का प्रयोग होता है। अतएव 'कर्हिचित्' शब्द के अर्थ कभी दान नहीं करते हैं, इस प्रकार का अर्थ ही प्रकाशित होता है—कभी भी (किसी भी परिस्थिति में) दान नहीं करते है, ऐसा नहीं। यदि मूल में "कर्हिचिदपि" शब्द होता तो इस प्रकार की आशंका का अवसर होता। जब तक साधक का हृदय भुक्ति, मुक्ति, सिद्धि लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि से कामना शून्य होकर श्रीभगवान में रति प्राप्ति के निमित्त आकुल आकांक्षा में तन्मय नहीं होता— तब तक श्रीहरि साधक को रति दान नहीं करते हैं—'कर्हिचित्' पद का इस प्रकार ही अर्थ समझना चाहिए। इसलिए लिखा है—"भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि वाञ्छा मने यदि रय। साधन करिलेओ प्रेम उत्पन्न ना हय॥"(चैः चः) कारण श्रीभगवान एकमात्र भक्ति द्वारा ही भक्त के प्रति प्रसन्न होते हैं अन्य किसी गुण के द्वारा नहीं।

(२०) "भक्ति ही भगवत्प्रीति-उत्पादन का एक

Scanned with CamScanner

मात्र हेतु"—श्रील प्रह्लाद महाशय की असुर-बालकगण के प्रति उक्ति—

"नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥"

(भाः ७/७/५१-५२)

"हे असुर बालकगण! तुम अपने मन में ऐसा मत मानो कि हम असुर हैं, हमारा श्रीहरि के भजन में अधिकार नहीं है। जीवमात्र का ही हरिभजन में अधिकार है दूसरी ओर देवत्व, ऋषित्व, बहुज्ञता, दान, तपस्या, यज्ञ, शौच, व्रत इत्यादि मुकुन्द की प्रीति के कारण नहीं हैं, वे एकमात्र निष्काम भक्ति के द्वारा ही प्रीति लाभ करते है—अन्यान्य सब ही नट के अभिनय के समान है।" श्रील नृसिंहदेव की स्तुति के प्रसंग में भी श्रील प्रह्लाद महाशय ने कहा है—

"मन्ये धनाभिजन रूपतपः श्रुतौज-।
स्तेजः प्रभाव बल पौरुष बुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो,
भक्त्या तुतोष भगवान्गज यूथपाय॥"(भाः ७/६/६)

" हे प्रभो! धन, उच्च कुल में जन्म, सौन्दर्य, तपस्या,

Scanned with CamScanner

पाण्डित्य, इन्द्रिय नैपुण्य, कान्ति, प्रताप, शारीरिक बल, उद्यम, प्रज्ञा ओर अष्टांग योग यह वारहो तुम्हारे सन्तोष-विधान में- समर्थ नहीं हैं। एकमात्र भक्तिद्वारा ही भगवान प्रसन्न होते हैं, श्रीगजराज की भक्ति से ही वे प्रसन्न हुये थे।" इन दो प्रमाणों के द्वारा एकमात्र भक्तिद्वारा ही जो श्रीहरि को समधिक आनन्द प्राप्त होता है-यही प्रदर्शित हुआ।

प्रश्न हो सकता है कि निरतिशय नित्यानन्द स्वरूप श्रीभगवान में नित्यानन्द की पूर्णता है, उनमें फिर भक्त की भक्ति से अधिक आनन्द का उद्गम किस प्रकार सम्भव हो सकता है? कारण निरतिशय और नित्य आनन्द के सहित इससे विरोध उपस्थित होता है और भगवत्सुख अल्प और अनित्य हो जाता है। इसके समाधान में श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने कहा है जो शास्त्र में श्री भगवान में निरतिशय आनन्दत्व और उस आनन्द का नित्यत्व वर्णित है, उसी शास्त्र में फिर भक्त की भक्ति से उनकी (श्रीभगवान की) अधिक प्रीति की बात भी वर्णित है। अतएव शास्त्र के इन दो वाक्यों के सामंजस्य की रक्षा करने से ही सिद्धान्त करना कर्त्तव्य होगा। तो इस प्रकार ही समझा जाय कि श्रीभगवान जिस प्रकार परमानन्दघन विग्रह है उसी प्रकार उनकी जो ह्लादिनी नाम की स्वरूपशक्ति यह श्री भगवान् को जिस प्रकार आनन्द-आस्वादन कराने में

Scanned with CamScanner

समर्था उसी प्रकार उनके भक्तगण को भी भगवत रसानन्द दान में समर्था है। स्वप्रकाश-वस्तुमात्र का स्वभाव ही यह है कि वह स्वयं अपने आप को प्रकाशित करती है एवं अन्य को भी प्रकाशित करने की क्षमता रखती हे। जिस प्रकार सूर्य अपने आप को भी प्रकाशित करता है समस्त विश्व को भी। इस ह्लादिनीशक्ति की ही परमवृत्ति रूपा है भक्ति। इस शक्ति को श्रीभगवान् अपने भक्तवृन्द में निक्षेप कर नित्य ही विद्यमान हैं। इस ह्लादिनी शक्ति की ही सारवृत्तिरूपा प्रीतिलक्षणा-भक्ति के सम्बन्ध में श्रीभगवान् अपने स्वरूपानन्द की अपेक्षा भी अधिक आनन्द लाभ करते है। अतएव आनन्द स्वरूप श्रीभगवान को भी भक्ति सम्बन्ध से अधिक आनन्दलाभ की बात श्रीपाद शुकदेव मुनि भी वर्णन कर रहे है—

"यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ् मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात्।
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगादयस्य॥"
(भाः ५/१५/१३)

"श्रीभगवान सन्तुष्ट होने से देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, तृण इत्यादि—आब्रह्म पर्यन्त वृह्माण्ड में सभी तृप्त हो जाते हैं, वह सर्वान्तर्यामी श्रीभगवान स्वयं सुखस्वरूप होकर भी गय महाराज के यज्ञ में "तृप्तोऽस्मि" अर्थात् 'बड़ा ही तृप्त हो गया'—इस बात को कहकर सुखी हुए थे।" इसलिए

Scanned with CamScanner

भगवान् श्रीमन्नारायण ने दुर्वासा ऋषि के प्रति कहा था–

"नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियंचात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥"

(भाः ६/४/६४)

अर्थात् : "हे ब्रह्मन् ! जिनकी मैं ही एकमात्र परागति हूँ, उन सब साधुभक्तजन को छोड़ मैं अपनी आत्मा को एवं आत्यन्तिकी षड़ैश्वर्य- सम्पत्ति की भी कामना नहीं करता हूँ।" इस श्लोक की सारार्थदर्शिनी टीका में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद लिखते हैं–"मत्स्वरूप भूतानन्दादपि मद्भक्त-स्वरूपानन्दोऽति' स्पृहणीय इति द्वयोरपि चिद्रूपत्वेऽपि भक्तिवर्तिन्या भक्तेस्तु गृहाख्य- चिद्वृत्ति विषाक रूपायाः सर्व्वचित सारभूत त्वान्ममानन्द स्वरूपस्याप्यानन्द कत्वादा कर्ष कत्वाच्च॥"

श्रीभगवान कहते है, "मेरे स्वरूपभूत आनन्द की अपेक्षा भी मेरे भक्त का स्वरूपानन्द या भक्त्यानन्द मेरा अतिशय स्पृहणीय है। कारण दोनों ही चित्स्वरूप होते हुए भी भक्त के हृदयस्थ भक्त्यानन्द महद अनुग्रह रूप चित्त्वृत्ति की परिपाकदशा के कारण वह सर्व चित्सार भूत है इसलिए आनन्द स्वरूप मुझे भी अधिक आनन्द दान कर एवं सर्वाकर्षक मुझे भी आकर्षित करती है।" श्रीभगवान् सच्चिदानन्द रससिन्धु हैं और साधक भक्त का भक्त्यानन्द एकविन्दु परिमाण

Scanned with CamScanner

ही होता है। उस विन्दु परिणाम आनन्द से आनन्दसिन्धु को अधिक आनन्दलाभ किस प्रकार से सम्भवपर हो सकता है? इस प्रश्न का उदय होना स्वाभविक है। इस विषय में एक द्रष्टान्त की अवतारणा की गई है। सूर्य प्रकाश का अनन्त स्रोत है, किन्तु सूर्यभक्तगण के दीपद्वारा उनकी पूजा करने से वे परमानन्द लाभ करते हैं। परमसुविज्ञ स्नेहमय पिता शिशु सन्तान के तात्पर्यशून्य, कलभाषित वाक्यों को सुनकर "अमृतं बालभाषितम्" के समान परम-आस्वादन और आनन्दलाभ करते हैं। उसी प्रकार आत्माराम आप्तकाम और पूर्णानन्द स्वरूप श्रीहरि भी भक्त के हृदयस्थित भक्त्यानन्द से समधिक आनन्दलाभ ही करते हैं। यह प्रीति का ही स्वभावसिद्ध धर्म है।

यह भक्तिरूपा स्वरूपशक्ति जीवहृदय में अभिव्यक्त करने का कारण श्रीभगवान ही हैं। यद्यपि जीव कुल की बुद्धि, इन्द्रिय इत्यादि अपने अपने विषय व्यापार में -प्रवृत्ति के कारण भी भगवान ही हैं, फिर भी किन्तु यह वास्तविक उपकार नहीं है—उपकाराभास मात्र है। भक्त के प्रति भक्ति से वे अनुरक्तचित्त होते हैं, यह उनकी असाधारणी कृपा है। अर्थात् श्रीभगवान् की कृपा दो प्रकार जीव जगत में अवतरण करती है, मायाशक्ति के रूप में जो कृपा की अभिव्यक्ति (घटित) होती है, उसका नाम साधारणी कृपा है, मन मे यह होने पर भी

Scanned with CamScanner

कि यह कृपा है वस्तुतः यह कृपाभास मात्र है क्योंकि इससे भवरोग की निवृत्ति नहीं होती है। फिर स्वरूपशक्ति के माध्यम से जो अभिव्यक्त है उसे असाधारणी कृपा कहते हैं। यह कृपा ही यथार्थ कृपा है—इससे ही जीव की भक्ति-प्राप्ति एवं आनुषंगिक भाव से भवरोग की नाश-प्राप्ति होती है यह असाधारणी कृपा ही महत्संग प्राप्त हुए भाग्यवान् जीव में अभिव्यक्त होती है।—कारण यह है कि यह विशेष कृपा महत्संग एवं महत्कृपा को वाहन बना कर ही जीवान्तर में संक्रमित होती है—स्वतन्त्र रूप से नहीं। तभी तो श्रीजीव-गोस्वामिपाद् लिखते हैं—"तस्माद् या कृपा तस्य सत्सु वर्तते सा सत्संग वाहनैव वा सत्कृपावाहनैव वा सती जीवान्तरे संक्रमते न स्वतन्त्रेति स्थितम।" (भक्तिसन्दर्भ -१८० अनुः)

(२१) **"श्रवण-कीर्त्तनादि भक्ति ही भगवदनुभव का एक मात्र हेतु"**—भगदनुभव कर्त्तव्य के विषय में श्रवण-कीर्त्तनादि साधनभक्ति ही जो एकमात्र हेतु अन्य कोई हेतु नहीं— श्रीकुन्तीदेवी के श्रीकृष्ण के प्रति स्तुति के एक श्लोक से यही प्रदर्शित हुआ है। यथा—

"श्रृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः,
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्तचिरेण तावकं,
भव प्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥" (भाः १/८/३६)

Scanned with CamScanner

" हे भगवान्! जो निरन्तर तुम्हारा चरित्र श्रवण, गान, कीर्त्तन, और स्मरण करते हैं एवं अन्य किसी के गान करने से उसे सुन कर आनन्दित होते हैं, वे सब जन ही अति शीघ्र तुम्हारे असाधारण श्रीचरणकमल दर्शन करते हैं। जिनके दर्शन से आनुषंगिक भाव से ही संसार-परम्परा की निवृत्ति हो जाती है।" इस श्लोक में श्रीकुन्तीदेवी 'त एव' अर्थात् "वे ही दर्शन करते है" इस 'एव' कार के द्वारा ज्ञानादि साधन से भगवदसाक्षात्कार या भगवदनुभव किसी समय भी नहीं होता है, यह सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। "भक्ति योगे भक्त पाय याहार दर्शन।"(चै: च:) श्रुति भी कहती है, "भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति" भक्ति ही श्रीभगवान को भक्त के निकट आकर्षण करके लाती है भक्ति ही श्रीभगवान का दर्शन कराती है। इस श्रुतिवाक्य से भी 'एव' कार समूह द्वारा अन्य साधनो की यह सामर्थ्य नहीं यही प्रदर्शित हुआ है। यहाँ पर "दर्शन" का अर्थ श्रीभगवान का माधुर्यास्वादन ही समझना होगा। कारण श्री भगवान की प्रकट लीला काल में असुरादि भक्तिहीन जन भी उनके दर्शन लाभ करते थे, किन्तु वह वास्तविक दर्शन- लाभ नहीं कारण माधुर्यमूर्ति श्रीहरि का दर्शन लाभ करने के बाद भी असुरगण का क्रोध, द्वेष आदि का ही उद्गम होता है। इसलिए श्रीभगवान का माधुर्य-आस्वादन ही उनका वास्तविक साक्षात्कार है। माधुर्यास्वादन के बिना

Scanned with CamScanner

साक्षात्कार भी असाक्षात्कार के समान है। दूसरी ओर साधक-भक्तगण श्री भगवान का दर्शन न पाकर भी श्रवण-कीर्त्तनादि के द्वारा उनके माधुर्यास्वादन में तन्मय हो जाते हैं।

(२२) श्रीभगवत् प्रापकत्व—एकमात्र निष्काम भक्ति के द्वारा ही जो श्रीभगवान को लाभ किया जाता है, श्री उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति से यह स्पष्टरूप में वर्णित हुआ है—

"भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोक महेश्वरम्।
सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः॥"

(भा: ११/१८/४५)

"हे उद्धव! जो व्यक्ति पूर्व वर्णित लक्षणा-भक्ति का अनुष्ठान करता है, वही व्यक्ति अव्यभिचारिणी-भक्ति के द्वारा सर्व लोकमहेश्वर, सब के जन्म, स्थिति और प्रलय के कारण, ब्रह्मस्वरूप या वेदादिशास्त्र के कारण स्वरूप मुझको ही प्राप्त होता है।" श्रीगीता में भी (८/२२) श्रीकृष्ण की उक्ति से जाना जाता है—

"पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्व्वमिदं ततम्॥"

"हे पार्थ! भूतसमूह जिसमें अवस्थित हैं, जिसके द्वारा यह समग्र जगत परिव्याप्त है, वह परमपुरुष मैं एकमात्र अनन्यभक्ति के द्वारा ही लभ्य हूँ। भक्त-साधक को वे केवल

Scanned with CamScanner

लभ्य ही नहीं, अतीव सुखलभ्य हैं।"

"अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:॥"

हे पार्थ! जो अनन्यचित्त से नित्य ही मेरा स्मरण करते हैं, वे नित्ययुक्त अर्थात् मेरे सहित नित्य ही मिलनाकांक्षी अथवा 'योग' का अर्थ 'सम्बन्ध' अर्थात् मेरे सहित दास-सख्य आदि सम्बन्धयुक्त—उन भक्त को मैं अति सुलभ्य हूँ।" दूसरी ओर यज्ञ, तपस्या, ज्ञान, योगदि द्वारा वे कभी भी सुलभ नहीं—"नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती।" (भा: ४/२०/१६)

श्रीभगवान ने पृथु के प्रति कहा—"समचित्त-भक्तगण के हृदय में मैं प्रकाशित हो जाता हूँ। यज्ञ, तपस्या, योगद्वारा मैं कभी भी सहज लभ्य नहीं हूँ।"

(२३)"मन के अगोचर—फलदातृत्व"—साधनभक्ति की मन के अगोचर फलप्रदान की सामर्थ्य है श्रील ध्रुव महाशय का चरित्र ही इसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। इस कारण श्रीभगवान ने ध्रुव को परमभक्ति-सम्वलित निजलोक या ध्रुवलोक प्रदान किया है। साधन भक्ति का वैशिष्टय एवं आस्वादन माधुर्य ध्रुव चरित्र में अभिव्यक्त हुआ है। श्री ध्रुव

Scanned with CamScanner

महाशय ने श्रीनारद की कृपा से उत्कण्ठा के सहित श्री भगवान की उपासना कर प्रेमलाभ एवं उसके बाद श्रीभगवत् साक्षात्कार-लाभ करके भी श्रीभगवान के निकट उनकी कथा-श्रवणात्मिका साधनभक्ति के रसास्वादन के निमित्त सत्संग के वर की प्रार्थना की है। यथा—

"भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि में प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं,
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥" (भा:४/६/११)

अर्थात् " हे अनन्त! जो सब निर्मलाशय महापुरुष सतत आप के प्रति भक्ति करते हैं, आप की कथा श्रवणार्थ मेरा उनके सहित संग हो।" श्रीभगवान यदि कहें—'ध्रुव! तुम अति दुःखमय दुस्तर—संसार सिन्धु पार के लिए वर-प्रार्थना न कर साधनभक्ति की वर प्रार्थना क्यों कर रहे हो?' उसके उत्तर में कहा है—हे प्रभो! सत्संग लाभ होने से उनके श्रीमुखनिर्गलित आप के गुणकथामृत-पान से मत्त होकर मैं अति अनायास ही इस अति दुःखमय भयंकर संसार सिन्धु को पार कर पाऊँगा।" "अत्र सत्संगोत्थयैन भक्त्याभगवन्तं साक्षात्कृत्यापि पुनः सत्संगस्य प्रार्थनाद्भक्ति कारणमपि भक्तिफलमपि स्वयं भक्तिरपि सत्संग इति भक्तानां मतं

Scanned with CamScanner

व्यञ्जितम्।" (टीका से श्रील विश्वनाथ) अर्थात् श्रील ध्रुवमहाशय ने श्री नारद के संग और कृपाजनित भक्ति के द्वारा साक्षात् श्रीभगवान का दर्शन-लाभ करके भी, उनके निकट सत्संग में श्रीहरि कथा- श्रवण के लिए वर की प्रार्थना की है। इससे सत्संग ही जो भक्ति का कारण, भक्ति का फल एवं साक्षात् भक्ति भी—यह भक्तजन का मत ही अभिव्यंजित हुआ है। कारण श्रीभगवान् जो रसस्वरूप और आनन्द स्वरूप है, उनके नाम-गुण-लीला रूप से ही उनकी उस रसरूपता या आनन्दरूपता की अभिव्यक्ति होती है। सत्संग से ही उनके इस नाम, गुण, लीलारस का आस्वांदन सम्भव है। इसलिए सत्संग ही श्रीभगवान को आस्वादन करने का प्रकृष्ट और एकमात्र उपाय है। इससे श्रवण-कीर्त्तनादि साधनभक्ति की ही उपादेयता प्रदर्शित हुई है। श्रील ध्रुवमहाशय के विष्णुधाम गमन के समय उनकी यथावस्थित देह ही हिरण्यमय वैकुण्ठ पार्षद रूप में परिणत हो गई थी और वे श्रीहरि के प्रेरित विमान में आरोहण कर ध्रुव लोक को चले गये थे। इसके द्वारा साधन भक्ति जो मन के अगोचर-फलदान में समर्थ है, यही व्यंजित हुआ।

(२४) **"साधनभक्ति का भगवत्वशीकारित्व"**:- साधनभक्ति की भगवत् वशीकारिता-शक्ति की बात श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कही है—

Scanned with CamScanner

"न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥"
(भा: ११/१४/२०)

अर्थात् "हे उद्धव! साधनात्मिका भक्ति मुझे जिस प्रकार वशीभूत करती हे, योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तपस्या, त्याग इत्यादि मुझे उस रूप में वशीभूत नहीं कर पाती है"– इसके तुरन्त बाद के श्लोक में भी वर्णित है– भक्त्याऽमेकया ग्राह्य श्रद्धयात्मा प्रिय: सताम्'' अर्थात् ''साधुगण की आत्मा अथवा अतिप्रिय मैं एकमात्र श्रद्धा जनिता भक्ति के प्रभाव से ही उनके वशीभूत होता हूँ। इस स्थल का विचारणीय विषय यह है कि ११ वें स्कन्ध के १४ वे अध्याय में साध्य और साधन उभयविध भक्ति का ही परस्पर अभिन्नभाव से माहात्म्य निरूपण देखने के कारण यह ''न साधयति मां योगो'' इत्यादि श्लोक का केवल साधन भक्तिमूलक तात्पर्य निर्णय करना कठिन होगा। फिर भी इस स्थल पर साध्यभक्ति की महिमा के रास्ते से ही साधन भक्ति की महिमा निरूपण में ही इस श्लोक का तात्पर्य निहित है। अर्थात् जिस साधनभक्ति से श्रीभगवान को वशीभूत करने का सामर्थ्ययुक्त फललाभ किया जा सकता है–इस भाव-भंगिमा से साधन भक्ति की महिमा ही वर्णन की गई है। इस स्थान का अभिप्राय यह है कि ''न साधयति मां योगो'' इत्यादि श्लोक में अष्टांग योग आत्मानात्म विचार रूप

Scanned with CamScanner

सांख्य योग, आश्रमधर्म इत्यादि श्रीभगवान को वशीभूत नहीं कर पाते है; भक्ति उन्हें जिस प्रकार वशीभूत करती है--इस अर्थ से भक्ति जो श्रीभगवान को वशीभूत करने में समर्था है, यही प्रदर्शित किया गया है। इस श्लोक में वर्णित अष्टांगयोग इत्यादि साधन समूह साधनपर्याय में ही उल्लिखित हैं, अतएव "न साधयति मां योगो" इत्यादि श्लोक में उल्लिखित भक्ति साधनभक्ति ही हो सकती है—प्रेमभक्ति नहीं हो सकती। कारण यह है कि सजाति में ही प्रतियोगिता धर्म प्रकाशित हो सकता है। विजातीय वस्तु में प्रतियोगी धर्म प्रकाशित नहीं हो पाता है। ब्राह्मण ही ब्राह्मण का पण्डित ही पण्डित का, प्रतियोगी हो सकता है, अब्राह्मण ब्राह्मण का, मूर्ख पण्डित का प्रतियोगी नहीं हो सकता। उसी प्रकार अष्टांगयोग वर्णाश्रमधर्म इत्यादि साधनों का प्रतियोगी साधन भक्ति होना ही युक्तियुक्त है, साध्यभक्ति या प्रेमभक्ति नहीं। इस अध्याय के प्रारम्भ में ही श्री उद्धव महाशय ने साधन की बात की ही श्रीकृष्ण से जिज्ञासा प्रकट की थी एवं उपसंहार में भी श्रीकृष्ण ने श्रवणादि साधनभक्ति की महिमा ही कही है, अध्याय के मध्य में भी साधन भक्ति का विषय ही वर्णित है। इसलिए साधन-भक्ति की महिमा के निरूपण मे ही इस अध्याय का तात्पर्य-निहित है, ऐसा समझना होगा।

(२५) भगवदर्पित लौकिक कर्मों का भी

Scanned with CamScanner

परमधर्मत्व— श्रवण-कीर्त्तनादि साक्षात्भक्ति जो परमधर्म एवं मन के अगोचर फल-प्रदान मे समर्था-उस सब महिमा की बात दूर ही रहने दो, लौकिक कर्म भी श्रीभगवान को अर्पित होने से, वे भक्तिस्वरूपता एवं भक्ति की अनुगति प्राप्त होने से, वे सब कर्म भी जो परमधर्म हो जाते हैं, श्रीउद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति से यही जाना जाता है। यथा –

"यो यो मयि परे धर्म्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत्।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम॥"

(भा: ११/२६/२१)

" हे उद्धव! मद्विषयकधर्म जो ध्वंस नहीं होता है, उस विषय में और क्या कहूँ? जो सब कर्म निरर्थक अर्थात् विफल श्रममात्र वह सब लौकिक-कर्म भी यदि निष्काम-भाव से मुझे अर्पित होते हैं- तो वे परमधर्म रूप से परिगणित होते हैं।" लौकिक कर्म जो विफल परिश्रम, अर्थात्-परिश्रम बहुल अथच फलशून्य इस विषय में दृष्टान्त दे रहे है- अत्यन्त भय से पलायन और शोकादि जन्य क्रन्दन इत्यादि दुःख जिस प्रकार विफल, अर्थात् पलायन से भय की निवृत्ति नहीं होती है एवं क्रन्दन से शोकादि की निवृत्ति नहीं होती है। इस प्रकार लौकिककर्म में परिश्रम का ही वाहुल्य हैं किन्तु फल कुछ भी नहीं। यह सब लौकिक कर्म भी यदि श्रीहरि को समर्पित हों, तो वे परमधर्म भक्ति में ही परिणत होते हैं।

Scanned with CamScanner

(२६) "**भागवतधर्म का आदर, अनुमोदनादि से भी महापातक नाश**"—साक्षात् श्रवण-कीर्त्तनादि भजनांग के पापनाशकत्व का विषय इसके पहले (६ संख्यक माहात्म्य में) भी उल्लेख किया गया है। साक्षात् श्रवण-कीर्तनादि भजनांग की बात दूर, भागवतधर्म का आदर, अनुमोदनादि से भी महापातक नाश का माहात्म्य श्रीवसुदेव के प्रति श्रीनारद की उक्ति से जाना जाता है—

"श्रुतोऽनुपठितोध्यात आदृतो वानुमोदितः।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो देव विश्वद्रुहोऽपि हि॥"

(भाः ११/२/१२)

" हे वसुदेव! भागवतधर्म श्रवण करने, पाठ करने, ध्यान करने, आदर और अनुमोदन करने से भी विश्वद्रोह-पातक से वह पातकीगण को शीघ्र ही पवित्र कर देता है।" जो श्रीहरि के गुण-लीला श्रवण-कीर्तनादि का साक्षात् भजन करते हैं उनकी बात और क्या कहूँ, जो भजन नहीं करते हैं केवल हरि-भजन का आदर करते है या केवल अनुमोदन भी करते है अर्थात् 'हरिभजन करना अच्छा है, बुरा नहीं'— उनका भी विश्वद्रोह महापातक शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है। श्रीपद्मपुराण के माघमाहात्म्य में देवदूत वाक्य यथा—

"प्राहास्मान यमुना भ्राता सादरं हि पुनः पुनः।
भवद्भिर्वैष्णवस्ताज्यो विष्णुञ्चेद्भजते नरः॥

Scanned with CamScanner

वैष्णवो यदगृहे भुक्ते येषां वैष्णव-संगतिः।
तेऽपि वः परिहार्या स्युस्तत्संगत हत किल्विषाः॥" इति।

"यमुना भ्राता यम ने सादर मुझ से वारम्बार कहा है—जो व्यक्ति श्रीविष्णु का भजन करते हैं, तुम लोग उन सब वैष्णवगण को त्याग करो, उनके प्रति तुम्हारा कोई अधिकार नहीं हैं। यहाँ तक कि जिसके घर वैष्णव भोजन करते है। जिनका वैष्णव संग है, उनका भी परित्याग करो। कारण यह है कि वैष्णव संग के प्रभाव से उनके समस्त पाप समाप्त हो गये हैं। फिर श्री वृहन्नारदीय पुराण में यज्ञमाली-उपाख्यान के बाद वर्णन है—

"हरिभक्ति पराणान्तु संगिनां संगमाश्रितः।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो महापातक वानपि॥"

"जो लोग हरिभक्ति-परायण जन का संगलाभ करते हैं, उनका भी यदि कोई संगलाभ करता है, तो वह महापापी होकर भी सब पापों से मुक्त हो जाता है।"

(२६) "एक बार मात्र भजन से ही समग्र आयुष्काल सार्थक"— श्रीसूत के प्रति श्रीशौनक ऋषि की उक्ति—

"आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोक वार्त्तया॥"
(भाः २/४/१७)

Scanned with CamScanner

अर्थात् "यह सूर्य देव उदय और अस्त होकर मानवगण की श्रीहरिकथा हीन वृथा आयु का हरण करते हैं। जिसका उत्तमश्लोक श्रीहरि की कथा में क्षण काल भी समय व्यतीत होता है, उनकी ही आयु वे हरण नहीं करते हैं।" श्रील जीवगोस्वामिपाद इस श्लोक की व्याख्या में लिखते हैं (भा: स: ३४ अनु:)—यह सूर्यदेव क्षिति-मण्डल के ऊपर उठकर और नीचे जाकर विश्व के हरिभजन विहीन मानवगणों की वृथा आयु को जैसे वलपूर्वक निकाल ले रहे हैं। जो उत्तम श्लोक श्रीहरि की कथा में एक मुहूर्तकाल भी व्यतीत करते हैं, उनकी आयु की ही वे नहीं लेते हैं। कारण "तावतैव सर्व्वसाफल्यादिति भाव:" उस मुहूर्त काल परिमाण हरिकथा से भी सब प्रकार का साफल्यलाभ होता है। अर्थात् एकक्षण काल सत्संग से श्रीहरि कथा-श्रवण का सौभाग्य-लाभ करने से भी वह श्रवणांग-भक्ति श्रोता के अन्तर में इस प्रकार एक अपार्थिव-आनन्द का स्पर्श दे जाती है जो क्रमश: समग्र आयु ही हरिभजनमय होकर वैष्णव जीवन लाभ होता है। "वैष्णवेर देह प्राकृत कभु नय। अप्राकृत देह भक्तेर चिदानन्द मय॥" (चै: च:) इस प्रकार काल फिर उनकी आयु का हरण नहीं कर पाता है।

(२८) **"भक्त्याभास से भी पापघ्नत्व"**—भक्ति के आभास से भी अजामिलादि में पापनाशकत्व देखा जाता है।

Scanned with CamScanner

भक्त्याभास या नामाभास चार प्रकार का होता है—

"सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलमेव वा।
वैकुन्ठनाम-ग्रहणमशेषाघहरं— विदुः॥"

(भाः ६/२/१४)

पुत्रादि के नाम के संकेत से नामोच्चारण 'सांकेत्य,' परिहास के साथ नामग्रहण 'परिहास्य' गीतादि के पूरण हेतु नामोच्चारण 'स्तोभ एवं हेला पूर्वक नामोच्चरण 'हेलन' कहलाता है। मृत्युकाल में महापातकी अजामिल को नामाभास हुआ था। वे मरने के समय अति भयंकर यमदूतगण के दर्शन से डर कर 'नारायण' नाम के अपने प्रियपुत्र को पुकारने लगे थे। इस नामाभास मात्र से विष्णुदूतगण ने आकर अजामिल को यमदूतगण के वन्धन से मुक्त कराया था। उनके श्रीमुख से नाम महिमा-श्रवण कर एवं उनके दर्शन से शुद्ध अन्तःकरण होकर अजामिल गंगातट पर जाकर भजन कर थोड़े समय में ही भगवद्धाम को प्राप्त हुए थे। यह अजामिल का आख्यान श्रीमद्भागवत में (६/२ अध्याय) वर्णित है।

(२६) "**साधनभक्ति का सर्वकर्मविध्वंस पूर्वक परमगति दातृत्व**"—थोड़े से प्रयत्न से अनुष्ठित साधन भक्ति सर्वकर्म विनाश कर परमगति प्रदान करती है, यह नानाशास्त्रो में वर्णित है। जैसा कि लघुभागवतामृत में वर्णन है—

Scanned with CamScanner

"वर्त्तमानञ्च यत्पापं यद्भुतं यद्भविष्यति।
तत्सर्व्वं निर्दऽत्याशु गोविन्दानल कीर्त्तनात्॥"

"अग्नि-स्थानीय श्रीगोविन्द नाम-कीर्त्तन के प्रभाव से भूत, भविष्य एवं वर्तमान के जितने भी पाप होगें, वे समस्त विनाश को प्राप्त होंगे।" ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है—"स समाराधितो देवो मुक्तिकृत् स्याद्यथा तथा। अनिच्छयापि दुत भुक् संस्पृष्टो दहति द्विजाः।" हे द्विजगण! अग्नि जिस प्रकार अनिच्छा से भी स्पर्श होने पर अंग को जला देती है, उसी प्रकार किसी भी प्रकार से आराधित होने पर भी श्रीभगवान् मुक्तिप्रदान करते हैं। स्कन्दपुराण में उमा महेश्वर संवाद में देखा जाता है"—

"दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं लभन्ति वै।
किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं नराः॥"

श्रीकृष्ण की दीक्षामात्र से ही जब मानवगण मोक्षलाभ करते हैं, तब जो सब मानव भक्ति के साथ श्रीअच्युत की सेवा करते हैं उनकी बात के बारे में क्या कहूँ? इन सब श्लोकों में मुक्ति का अर्थ ही प्रेमभक्ति है। वास्तव में भक्ति से ही यथार्थ मुक्तिलाभ होती है, ब्रह्मज्ञान से अपराध मात्र ही लाभ होता है यथा—

"जीवन्मुक्त अनेक सेओ दुइ भेद जानि।
भक्त्ये जीवन्मुक्त, ज्ञाने जीवन्मुक्त मानि॥

Scanned with CamScanner

भक्त्ये जीवन्मुक्त—गुणाकृष्ट कृष्ण भजे।
शुष्कज्ञाने जीवन्मुक्त अपराधे मजे॥"
(चै: च: मध्य २४ परि:)

"सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम्।
सर्व्वपाप-विनिर्मुक्त: प्रयाति परमं पदम्॥"
(पद्मपुराण)

"सम्वन्धवशत: ही हो अथवा मोहवशत: ही हो जो श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे सर्वपाप से विमुक्त होकर परमपद पर आरोहण करते हैं।" श्रीरामायण में श्री रामचन्द्र के वाक्य से भी देखा जाता है—

"सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व्वथा तस्मै ददाम्येतद्व्रतं मम॥"

"जो व्यक्ति मेरे शरणागत होकर एकबार भी कहते है कि 'हे भगवान! मैं आपका हूँ, मैं उसको सर्वदा सब प्रकार से अभय-दान करता हूँ।" श्रीमद्भागवत में वर्णित है—

"आपन्न: संसृति घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
तत: सद्यो विमुच्येत यद्विभेति स्वयं भयम्॥"
(भा: १/१/१४)

श्रीशौनकादि ऋषिगण ने श्रीसूतमुनि के प्रति कहा "जो व्यक्ति अति घोरतर संसार दशा को प्राप्त होकर भी विवश अवस्था में भी श्रीहरि का नाम उच्चारण करता है, वह

Scanned with CamScanner

उस नामोच्चारण के प्रभाव से संसार से विमुक्त हो जाता है। कारण यह है कि नामोच्चारण मात्र से स्वयं भय अर्थात् काल का काल महाकाल पर्यन्त भयभीत होता है।"

साक्षात् भक्ति की बात को दूर रहने दो भक्ति के आभास से भी सर्वपाप क्षयपूर्वक विष्णुलोक-प्राप्ति की बात जानी जाती है। श्री वृहन्नारदीय पुराण मे उल्लेख है– मदिरा पान से मत्त दो व्यक्ति स्वयं कोकिल अभिमान से एक डन्डे के अग्रभाग में एक बस्त्रखण्ड वांधकर उसे हाथ में लेकर एक भग्न विष्णुमन्दिर में नृत्य किये थे उससे उन्हे विष्णुमन्दिर मे ध्वजारोपण का फल लाभ मिला था और भी उल्लेख है– एक पक्षी व्याध द्वारा वाणविद्ध होकर भूमिपर गिर गया एक कुत्ते ने उसे मुँह में दबाकर विष्णुमन्दिर की परिक्रमा की फलस्वरूप मृतपक्षी को विष्णुलोक की प्राप्ति हुई। कहीं कहीं भक्ति के आभास से भी महाभक्ति फल-प्राप्ति का उल्लेख पाया जाता है। जिस प्रकार श्रीनृसिंह पुराण में वर्णन है– महाभागवत श्री प्रह्लाद महाशय पूर्वजन्म में एक वैश्या के संग विवाद कर अज्ञातभाव से श्री नृसिंह चतुर्दशी तिथि में उपवास और जागरण किये थे, फल स्वरूप श्री प्रह्लादरूप में उन्होंने जन्मग्रहण किया था श्री व्रह्मा ने गर्भोदकशायी श्रीभगवान की स्तुति प्रसंग में कहा है–

Scanned with CamScanner

"यस्यावतार गुण कर्म विडम्बनानि,
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा,
सैयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥" (भा: ३/६/१५)

" हे प्रभो! जिस व्यक्ति ने जीवन मे कभी आपका नाम-कीर्त्तनादि नहीं किया, केवल प्राणान्त-समय पर किसी कारणवश विवश अवस्था में आपके अवतार, गुण, लीलावाचक किसी एक नाम का उच्चारण किया, वह नामोच्चारणकारी व्यक्ति उसी क्षण अनेक जन्म-संचित पापराशि से मुक्त हो कर सर्वोपाधिशून्य सच्चिदानस्वरूप आप को ही लाभ करता है, मैं उस जन्मरहित आपके शरणापन्न हुआ।"
शुद्ध भक्त्याभास से जो सब प्रकार के पाप विनष्ट होकर श्रीभगवान के श्रीचरणकमल-सान्निध्य को प्राप्ति होती है, यह तो होता ही है, किन्तु अपराधरूप से प्रतीयमान भक्त्याभास के भी महाप्रभाव शास्त्र में वर्णित है। विष्णु धर्म्मोत्तर में वर्णित भगवन्मन्त्र के द्वारा अपनी रक्षा करने वाले ब्राह्मण के प्रति राक्षस की उक्ति—

"त्वामत्तुमागत: क्षिप्तो रक्षया कृतया त्वया।
तत्संस्पर्शाच्च में ब्रह्मन्! साध्वेतन्मनसि स्थितम्।
का सा रक्षा न तां वेद्मि वेद्मि नास्या: परायणम्।
किन्त्वस्या: संगमासाद्य निर्वेदं प्रापितं परम्॥"

Scanned with CamScanner

"हे ब्रह्मन्! मैं तुम्हे भक्षण करने को आया था, किन्तु तुमने जो रक्षा-विधान किया था उससे मैं क्षिप्त हुआ हूँ। वह रक्षा किस प्रकार की है? उसका मूल आश्रय क्या है, कुछ नहीं जानता हूँ। फिर भी मात्र यही समझा है कि उस रक्षा के संग प्राप्त होने से मेरे हृदय में निर्वेद उपस्थित हुआ है।" इस प्रमाण से ब्राह्मण भक्षण में प्रवृत्त होने के कारण अपराधी राक्षस के हृदय में भी उस ब्राह्मण द्वारा पठित रक्षामन्त्र-श्रवण से पवित्र भाव का उदय हुआ, ऐसा जाना जाता है। फिर इस विष्णुधर्मोत्तर में वर्णन है कि किसी भगवन्मन्दिर में एक चूहा रहता था, वह चूहा प्रतिदिन ही श्रीमन्दिर के प्रदीप का तेल पीता था। एकदिन दैववशतः उस प्रदीप की बत्ती उसके दाँत में संलग्न हो जाने से प्रदीप अधिक प्रज्ज्वलित हो उठा, उसके ताप से जल जाने से चूहे ने श्रीमूर्ति के सम्मुख ही छटपट करते करते श्रीमन्दिर में ही प्राण त्याग दिए। श्रीमन्दिर में प्रदीप-दान के फलस्वरूप अगले जन्म में उसने राजमहिषी रूप में जन्म ग्रहण किया एवं श्रीमन्दिर में वहुदीप-प्रदानादि लक्षणा भक्ति में निष्ठा प्राप्त हुई। बाद में देहान्त के बाद उसकी भगवद्धाम में गति हुई। यहाँ पर इस चूहे का श्रीमन्दिर के प्रदीप के तैल पान कार्य अपराध है, फिर भी भगवन्मन्दिर में दीप-प्रदान रूप भक्ति के आभास से भी भगवद्धाम प्राप्ति का द्रष्टान्त दिखाया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में जन्माष्टमी ब्रत-माहात्म्य

Scanned with CamScanner

में वर्णित है जन्माष्टमी-व्रतकारिणी एक दासी के सहित दु:संग से भी किसी व्यक्ति को भगवत्प्राप्ति हुई थी। यहाँ पर भी दासी का दु:संग एक अपराध है तव भी दासी ने जन्माष्टमी व्रत किया था इस कारण उसकी गणना एक भक्त के रूप में हुई उसके संगरूप भक्तसंगाभास-प्रभाव से भी भगवत्प्राप्ति द्रष्टान्त दिया गया है। वृहन्नारदीय में भी देखा जाता है—उक्त प्रकार दुष्टकार्य के निमित्त कोई व्यक्ति भगवन्मन्दिर-मार्जन कर उत्तमा-गति लाभ किया था। इस द्रष्टान्त में भी मन्दिर में दुष्टकार्य अपराध जनक उस उद्देश्य से भगवन्मन्दिर-मार्जन रूप भक्ति के आभास से भी भगवद्धाम प्राप्ति हुई थी—इस अंश से ही प्रकरण का द्रष्टान्त दिया गया है व्रह्मज्ञानादि साधना की इस प्रकार की सामर्थ्य कहीं नहीं दिखती है। व्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित है—

"विषयस्नेह संयुक्तो व्रह्माऽमिति यो वदेत्।
गर्भवास-सहस्त्रेषु पच्यते पापकृन्नर:॥"

अर्थात् "जड़ीय विषय के प्रति प्रीतियुक्त होकर जो व्यक्ति "मै व्रह्म हूँ" इस प्रकार की बात कहता है, वह पापात्मा मानव सहस्त्रवार गर्भयन्त्रणा भोग करता है।" दूसरी ओर अल्पप्रयास-साध्य भक्ति का भी श्रीभगवान को वशीभूत करने का सामर्थ्य देखा जाता है। यथा व्रह्म पुराण में श्री शिव वाक्य—

Scanned with CamScanner

"द्रष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत्।
अर्च्चितश्चार्च्चये नित्यं स देवो द्विजपुंगवाः॥" इति।

"हे द्विजश्रेष्ठगण! उन श्रीभगवान को जो देखते हैं श्रीभगवान भी उसका सर्वदा दर्शन करते हैं, जो उनका आश्रय करते हैं, श्रीभगवान भी नित्यप्रति उनका आश्रय करते हैं उनकी जो पूजा करते हैं, श्रीभगवान भी उनका प्रति-पूजन करते हैं।" इससे अल्प प्रयास से साध्य भक्ति भी जो श्रीभगवान को एकान्त वशीभूत करने का कारण हो जाती है यही प्रदर्शित हुआ। विष्णुधर्म में भी वर्णित है—

"तुलसीदल मात्रेण जलस्य चुलुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥"

"भक्तवत्सल श्रीभगवान् (अनायासलभ्य) तुलसीदल और मात्र एक चुल्लू जल लाभ करके ही भक्तगण के निकट आत्मविक्रय कर देते हैं।"

"कृष्ण के तुलसी-जल देय येइ जन।
तार ऋण शोधिते कृष्ण करेन चिन्तन॥
जल-तुलसीर सम किछु घरे नाहि धन।
तवे आत्मा वेचि करे ऋणेर शोधन॥"

(चैः चः आदि ३ य परिः)

श्रीमत् जीवगोस्वामिपाद ने कहा, साधन भक्ति की जो सब महिमा वर्णित हुई यह सभी शास्त्रवाक्य एवं भ्रम-

Scanned with CamScanner

प्रमादादिशून्य अभ्रान्त ऋषिवाणी है। यह सब केवल प्रशंसा वाक्य-मात्र नहीं हैं। कारण भक्ति के आभास से भी श्री अजामिल आदि के भगवद्धाम-प्राप्ति की बात श्रीमद्भागवत में वर्णित है। श्रीभगवन्नाम-कौमुदी-इत्यादि ग्रन्थ में इस विषय पर बहुत युक्ति प्रदर्शित हुई है। श्रीभगवन्नाम-माहात्म्य श्रवण करके भी जो व्यक्ति उसे केवल प्रशंसा वाक्य ही मानता है, शास्त्र में उसकी अति भयंकर दोष की बात सुनी जाती है। पद्मपुराण में नामापराध-वर्णन-प्रसंग में लिखा—"तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम्" श्री हरिनाम-माहात्म्य को प्रशंसा वाक्य मानना एक भयंकर अपराध है। कात्यायन संहिता में वर्णन है—

"अर्थवादं हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः।
स पापिष्ठो मनुष्याणां निरये पतित स्फुटम्॥"

"जो मनुष्य श्रीहरिनाम-माहात्म्य को प्रशंसा वाक्य मानते हैं वे व्यक्ति मनुष्यों में अत्यन्त पापिष्ठ है; वे निश्चय ही घोर नरक में गिरते हैं।" ब्रह्मसंहिता में वौधायन के निकट परमेश्वर ने स्वयं कहा है—

"मन्नामकीर्त्तन फलं विविधं निशम्य,
न श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम्।
यो मानुषस्तमिह दुःखचये क्षिपामि,
संसारघोर-विविधार्त्तिनि पीड़तांगम्॥"

Scanned with CamScanner

जो मनुष्य मेरे नाम कीर्तन के विविध फल सुन कर भी उसमे विश्वास नहीं करते हैं, वह उसे अर्थवाद मानते हैं मैं उन्हे संसार में घोर दु:खराशि से पीड़ित करता हूँ, और विशाल दु:ख समुद्र में फेंक देता हूँ।" नामकीर्तन के उपलक्षण से अन्यान्य भजनांगों का महात्म्य सुनकर प्रशंसा वाक्य मानने से भी इसी प्रकार का दोष होगा। साधन भक्ति के यथार्थ की यह सब महिमा होते हुए भी मेरे जैसे जीव में कोई फलोदय द्रष्टिगोचर नहीं होता है, इस विषय में अर्थवाद-कल्पना, वैष्णव-अनादरादि दुरन्त अपराध ही प्रतिबन्धक मानने होंगे। पद्मपुराण में नामापराधभञ्जन स्तोत्र मे देखा जाता है—

"नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथ गतं श्रोत्रमूलं गतं वा।
शुद्धं वाशुद्ध वर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्॥
तच्चेद्देह द्रविण-जनतालोभ पाषण्ड मध्ये
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात विप्र॥" इति।

"हे विप्र! मात्र एक ही श्रीभगवन्नाम शुद्धवर्ण हो या अशुद्ध वर्ण हो, व्यवधानरहित होकर जिसके वाक्य, स्मृतिपथ या कर्णपथ पर उदित होता है, उनकी निश्चय ही वे (श्रीनाम) रक्षा करते हैं। किन्तु यदि यही श्रीनाम देह, धन, जनता, लोभ एवं पाषन्ड के लिए प्रयुक्त किये जायें, तो वे शीघ्र फलप्रद नहीं होते हैं।" इस श्लोक की व्याख्या में लिखा है—"देहादि लोभार्थं ये पाषण्डता गुर्व्ववज्ञादि दशापराधयुक्तास्तनमध्ये

Scanned with CamScanner

इत्यर्थ।" (भः सः १८३ अनुः) अर्थात् देहादि लोभके उद्देश्य से जो सब पाषण्डीगण गुर्व्ववज्ञादि दसविध नामापराधयुक्त हैं उनमें भी यद्यपि नामोच्चारण-चेष्टा का अभिनय देखा जाता है, तथापि उसके पक्ष में नामकीर्तन फललाभ सुदूर पराहत ही हो जाता है। कारण अपराधी व्यक्ति के प्रति अप्रसन्नता हेतु श्रीहरिनाम अपने प्रभाव विस्तार से विरत रहते हैं। अतएव साधक को सर्वदा मन में रखना चाहिए कि साधनभक्ति की जो सब अद्‌भुत महिमा की बात शास्त्र में वर्णित है, वह निरपराध के लिए ही प्रकटित है, अपराधी के लिए नहीं। अपराध को छोड़ ऐसी कोई विरुद्ध शक्ति नहीं, जिसके द्वारा साधनभक्ति की अबाध शक्ति को रोका जा सके। अपगत होता है 'राध' अथवा 'सन्तोष' जिससे वही अपराध है। अपराध होनें से भक्तिदेवी का सन्तोष अपगत होता है। जिसके कारण वे अपराधी के निकट अपने प्रभाव को संगोपन कर लेती हैं। इसलिए भजन फल का अनुभव न पाना अपराध का ही विषमय फल है। श्रीमद् जीव गोस्वामिपाद ने लिखा है—"श्रद्धा भक्तिशब्दाभ्यामत्रादर एव विधीयते। अपराधास्तु सर्व्वे ऽनादरात्मका एव प्रभुत्वावमानतश्च। तस्मादपराधनिदान मत्रानादर परित्याज्य इत्यर्थः।"(भः सः ३०१ अनुः) श्रद्धा और भक्ति शब्द द्वारा आदर ही (उचित) न्यायसंगत होता है। तो यह समझना होगा कि समस्त अपराध ही अनादरमूलक हैं,

Scanned with CamScanner

यह प्रभुत्व की अवमानना के लिए ही होता है। अतएव अपराध के मूलकारण अनादर को ही परित्याज्य समझना होगा। भक्तिदेवी को परम आदर, यत्न और सम्मान के सहित सर्वशिरोमणि कर के रखना होगा उनके प्रति सर्वापेक्षा अधिक गौरव प्रदर्शन करना होगा श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी सेवा करनी होगी। यदि किसी के मन में ऐसा आता हैं, कि मेरा तो कोई अपराध ही नहीं, तब मैं भजनफल का अनुभव क्यों नहीं पाता हूँ? इसके उत्तर में कहा जाता है कि फल के द्वारा ही फल के कारण का अनुमान किया जाता है। भजनफल का अनुभव न पाने से अपराध सुनिश्चित है इस बारे में किसी को किसी प्रकार का संशय नहीं रह सकता। यदि भजनफल का किसी रूप में अनुभव न पाया जाय एवं जानकारी में कोई अपराध न हुआ हो, तो समझना चाहिए कि कोई अज्ञात अपराध अथवा पर्वूजन्म का अपराध निश्चय ही है—इसलिए भक्तिदेवी अप्रसन्न हो रही हैं।

कई प्रकार के बाधाबिघ्न के अस्तित्व से साधक प्राचीन महदपराधादि के अस्तित्व उपलब्धि कर अपनी परीक्षा स्वयं ही कर सकेंगे। श्रीमद् जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है—"यत:कौटिल्यम अश्रद्धा भगवन्निष्ठाच्यावक वस्तुन्तराभिनिवेशो भक्तिशैथिल्यं स्वभक्तादिकृत मानित्व मित्येव मा दीनि महत्संगादि लक्षणभक्त्यापि निवर्त्तयितुं दुष्कराणि चेत्तर्हि

Scanned with CamScanner

तस्यापराधस्यैव कार्याणि तान्येव च प्राचीनस्य तस्य लिंगानि।" (१) कौटिल्य (२) अश्रद्धा (३) भगवन्निष्ठा-च्युतिकारक कृष्णेतर वस्तु के प्रति अभिनिवेश (४) भजनशैथिल्य और (५) भजनाभिमान—यह पाँच प्रकार के दोष यदि महत वैष्णवगण के संग इत्यादि लक्षणमयी भक्ति द्वारा भी निवारण करना दु:साध्य हो तो यह सकल दोष अपराध के कार्य एवं पूर्व अपराधों के सूचक कारण जानना चाहिए।" हो सकता है कि इस जन्म में किसी का कोई अपराध न हुआ हो, किन्तु पूर्वजन्म कृत अपराध के परिचायकरूप में इन कौटिल्यादि पाँचों की सत्ता विद्यमान है—यही समझना होगा। अर्थात् साधक जब देखेंगे कि महाभागवतगणों के संग में बहुत भजन करने पर भी हृदय की कुटिलता, भक्ति, भक्त और भगवान की महिमा सुनकर भी विश्वास का अभाव, जिससे भगवन्निष्ठा से दूरी होती है—इस प्रकार के विषयान्तर में मन का अभिनिवेश, भजन विषय में शैथिल्य एवं स्वयं का भजनाभिमान इन पाँच का अपगम नहीं होता है, तब समझना चाहिए कि वर्तमान जन्म का हो या पूर्व जन्म का हो प्रचुर अपराध विद्यमान है। नहीं तो साधु मुख से श्रीहरिकथा श्रवणादि द्वारा भी हृदय के यह दोष समूह क्यों नहीं जा रहे हैं ? श्रील ठाकुर महाशय ने भी लिखा है—"साधुमुखे कथामृत शुनिया विमल चित, नाहि भेल अपराध-कारण।" (प्रे: भ: च:)

Scanned with CamScanner

"कौटिल्य"– कुटिलचित्त व्यक्तियों की नाना प्रकार से अनुष्ठित पूजा भी श्रीभगवान अंगीकार नहीं करते हैं। कौरवों-पाण्डवों के कुरूक्षेत्र-युद्ध के पहले श्रीकृष्ण पाण्डवगण के दूत के रूप में हस्तिनापुर गये थे। कुटिलात्मा दुर्योधनादि ने श्रीकृष्ण को वशीभूत करने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न से उनकी अर्चना-स्तव-स्तुति आदि आरम्भ कर दी थी। श्रीभगवान ने उन कपटाचारीगण की श्रद्धाहीन वाह्यिक-सेवा के प्रति कोई द्रकपात या कर्णपात भी नहीं किया। इसके द्वारा यह प्रमाणित हुआ कि कापट्यपूर्ण चित्त-मानवगण की उत्तम पूजा भी श्रीभगवान ग्रहण नहीं करते। शास्त्रादि श्रवण करके भी आधुनिक किसी किसी को अपराध-दोष से श्रीभगवान, श्रीगुरू एवं भक्तगण के प्रति जो अन्दर अनादर होते हुए भीं वाहर अर्चनादि आरम्भ या लोगों को दिखाने के लिए पूजा करते हुए देखा जाता है, इसी को कुटिलता कहते हैं। अकुटिल मूढ़गण की भजन के आभासमात्र से ही कृतार्थता प्रदर्शित हुई है। कुटिल चित्त व्यत्तियों की किन्तु प्रारम्भ से भक्ति की शुरुआत ही नहीं होती है।

स्कन्द पुराण में श्रीपराशर वाक्य से वही प्रदर्शित हुआ है–

"नह्यपुण्यवतां लोके मूढ़ानां कुटिलात्मनाम्।
भक्तिर्भवति गोविन्दे कीर्त्तनं स्मरणं तथा॥"

Scanned with CamScanner

पुण्यहीन कुटिल चित्त-मूर्खगण की श्रीगोविन्दचरणों में भक्ति नहीं होती है। कीर्त्तन-स्मरणादि भजन भी नहीं। कपटी व्यक्ति के चित्त का कपटता दोष दस हजार विघ्न के तुल्य है। विष्णुधर्मोत्तर में लिखा है—

" सत्यं शतेन विघ्नानां सहस्त्रेण तथा तपः।
विघ्नायुतेन गोविन्दे नृणां भक्तिनिवार्य्यते॥"

" सौ बिघ्नो से सत्य नष्ट होता है, सहस्त्र विघ्नों से तपस्या नष्ट हाती है, दस हजार विघ्न से मानवमात्र की श्रीगोविन्द चरणें में भक्ति बाधित हो जाती है।" श्रीसूतमुनि ने भी शौनकादि ऋषिगण के प्रति कहा है—

" तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्य शरणै र्नृभिः।
कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः॥"

(भाः ३/१६/३४)

"हे शौनक सारल्य एवं अनन्यभाव से शरणागत मानवगण द्वारा सुख से आराध्य श्रीकृष्ण को कौन कृतज्ञ व्यक्ति सेवा न करके रह सकता है? किन्तु असाधु एवं कुटिल चित्त मानवगण के पक्ष में वे दुराराध्य हैं।" इस स्थल का तात्पर्य यह है कि जितने दिन पर्यन्त हृदय में कौटिल्य रहेगा, उतने दिन तक उसका हृदय असाधु उस असाधुचित्त से अनुष्ठित भजन में श्रीहरि सन्तुष्ट नही होते है। और सरल चित्तसे उनके चरणों में प्रपन्न होकर स्वल्प भजन करने से भी वे साधु, उनके

Scanned with CamScanner

अनुष्ठित भजन से श्रीभगवान प्रसन्न हो जाते हैं। भगवद्भक्तगण भी अकुटिल स्वभाव मूर्खगण को अनुग्रह करते रहते है; किन्तु कुटिल चित्त-विज्ञगण को भी अनुग्रह करने की इच्छा नहीं करते हैं। श्रीचमस योगीन्द्र ने महाराज निमि के प्रति कहा है—

"दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युत कीर्त्तनाः।
स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम्॥
विप्रोराजन्य वैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम्।
श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः॥"

(भाः ११/५/४-५)

"हे राजन्! जो सब स्त्री, शूद्रादि नीचजन सर्वदा श्रीहरि कथा-श्रवण एवं अच्युत-कीर्त्तन से दूर अवस्थित, वे सब आपकी ही तरह भगवदभक्तगण के कृपा के योग्य हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यगण उपनयन एवं वेदाध्ययन रूप श्रौत जन्म द्वारा श्रीहरिपादपद्म लाभ के योग्य होकर भी वेदवर्णित अर्थवाद-वचन से मोहित होकर भगवद उपासना परित्याग पूर्वक स्वर्गादि कर्मफल में आसक्त होते हैं।" जो अज्ञ (मूर्ख) हैं, वे आप जैसे महत के अनुग्रह के योग्य हैं— यह बात कहने का उद्देश्य ही इस श्लोक की उक्ति हैं। इस श्लोक की सारार्थदर्शिनी टीका में लिखा है—वे अज्ञगण दो प्रकार के हैं। एक प्रकार-जिनके पास हरिभक्त परायण भक्तगण गमन नहीं करते हैं, इस कारण वे हरिकथा श्रवण का सौभाग्य लाभ नहीं

Scanned with CamScanner

करते हैं। द्वितीय प्रकार—जो जन्मान्ध, जन्म वधिर अथवा उन्मत्त, यह दो प्रकार के व्यक्ति ही आपके निकट अनुग्रहीत हो पाते हैं। आप लोग प्रथम प्रकार के अज्ञगण के निकट जाकर उनको हरिकथा सुनाकर कृतार्थ करते है, एवं वधिर आदि व्यक्ति के मस्तक और वक्ष पर श्रीचरणरज अर्पण कर उनके हृदय में अभीष्ट वस्तु की अनुभूति जगाकर उन्हें धन्य कर देते हैं। किन्तु थोड़े से ज्ञान से दुर्विदग्ध मानवगण की चिकित्सा कठिन है, उनके अभिमान रोग की निवृत्ति करना दु:साध्य है। इसका द्रष्टान्त श्री अजामिल उद्धार प्रसंग में—यमदूतगण हैं। ज्ञान के कणिकाभास पाने से जो स्वयं को परमविज्ञ मानकर अभिमान करते हैं वस्तुत: वे अज्ञानी हैं, इस प्रकार ज्ञानकणिका से उद्धत-प्रकृति के व्यक्ति को 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध' कहते हैं। यमदूतगण श्रीविष्णुदूतगण के श्रीमुख से श्रीनाममहिमा, श्रीभक्ति, भक्त, एवं भगवान की महिमा श्रवण करके भी एवं नामाभास से अजामिल का उद्धार-दर्शन करके भी विष्णुदूतगण के वचनों को सादर ग्रहण अथवा उनमें विश्वास नहीं कर पाये। इनसे तो हम ही ज्ञान और वुद्धि में श्रेष्ठ हैं—इस प्रकार के अभिमान के कारण विष्णुदूतगण का संगलाभ करके भी वे वञ्चित रह गये।

"अश्रद्धा"—"दृष्टे श्रुतेऽपि तन्महिमादौ विपरीत भावना दिना विश्वासा भाव:" अर्थात् श्री गुरु, भक्त, भक्ति,

Scanned with CamScanner

और भगवान इनकी महिमा-दर्शन और श्रवण कर के भी असम्भावना, विपरीत भावना आदि के द्वारा विश्वास के अभाव का नाम 'अश्रद्धा' है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के विश्वरूप आदि का दर्शन करके भी दुर्योधन का उनके प्रति परमेश्वर के रूप में विश्वास नहीं हुआ। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में श्री शौनकादि ऋषिगण ने श्री सूतमुनि के प्रति कहा है—

"आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन।
ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥"

(भाः १/१/१४)

"हे सूत! अति घोर संसार-दशा प्राप्त मानव विवश अवस्था में भी जिसका नाम उच्चारण कर तत्क्षणात् संसार दशा से विमुक्त हो जाता है, कारण यह है कि स्वयं भय भी जिसके नाम के भय से भीत हो जाता हैं।" इत्यादि शौनक-वचनों के एवं "दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः" अर्थात् वज्राग्र सदृश तीक्ष्ण हस्तिदन्त समूह भी मेरे स्पर्श से टूट गये है" इत्यादि श्री प्रह्लाद के वचनों में सर्वसाधारण को विश्वास नहीं हैं, उसका कारण भगवन्नामापराध है। भक्ति का इस प्रकार का आनुसंगिक फल सब भक्तों के निकट उदित नहीं होता है। यदि किसी को जनसमाज मे श्रीभगवान की महिमा के प्रचार की इच्छा का उद्रेक होता है—उसको ही इस प्रकार के आनुसंगिकफल का

Scanned with CamScanner

प्रकाश पाया जाता है। अपनी रक्षा के निमित्त अथवा अपनी महिमा प्रचार के निमित्त शुद्ध भक्त के हृदय में कभी इस प्रकार भक्ति के महाप्रभाव प्रकाशित करने की इच्छा का उदय नहीं होता हैं। श्री प्रह्लाद महाशय के वचनों से यही जाना जाता है। यथा—

"दन्तागजानां कुलिशाग्रनिष्ठुरा,
शीर्णा यदेते न वलं ममैतत्।
महाविपत्पात—विनाशनोऽयं,
जनार्द्दनानुस्मरणानुभाव :॥"

(श्रीविष्णुपुराण)

" वज्र की अपेक्षा भी अतिनिष्ठुर हस्तिदन्त समूह जो भग्न हो गये थे, वह मेरा बल नहीं था—यह तो महा-विपद-विनाशन श्री जनार्दन के निरन्तर स्मरण का प्रभाव था।" इस स्थल का ज्ञातव्य विषय यह है, कि शुद्धभक्त के हृदय में श्रीभगवान की प्रेमसेवा की कामना को छोड़कर अन्य किसी प्रकार की इच्छा का उद्‌गम नहीं होता है। अन्यान्य फल समूह आनुसंगिकभाव से ही भक्त के निकट उपस्थित होते हैं। जिस प्रकार रन्धननिमित्त चूल्हें में आग जलाने पर आनुसंगिक भाव से शीतनाश एवं अंधकार नाश हो जाता है, उसी प्रकार शुद्धभक्तगण श्रीहरि की प्रेम सेवा- कामना से ही भजन करते हैं, आनुसंगिक भाव से ही उनके विघ्नादिनाश, संसारनिवृत्ति,

Scanned with CamScanner

अविद्यानाश इत्यादि हो जाते हैं। इन सब फलों की कामना भक्त हृदय में रहने से शुद्ध भक्ति की हानि होती है। श्रीकृष्ण सुख कामना को छोड़ अन्य कामना भक्त के प्रेमप्राप्ति के लिये विघ्न है। इसलिए आनुसंगिक विघ्ननाशादि फल समूह यदि भक्त की श्री भगवान की महिमा प्रचार की अभिलाष है, तभी उदित हो जाते हैं, नहीं तो नहीं होते हैं। जिस प्रकार श्री परीक्षित इत्यादि महाभागवतगण में भक्ति के प्रभाव से विपत्तिनाश की आकांक्षा का उदय ही नहीं होता है। उन्होंने ब्रह्मशापग्रस्त होकर गंगातट पर प्रायोवेशन कर ऋषिगण के समक्ष कहा था—"द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षकोवा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः" (भाः १/१९/१५) 'ऋषिगण! उस विप्र के द्वारा प्रेरित माया या तक्षक ही आकर मुझे दंशन करे, आप लोग विष्णुगाथा का गान करिये।' प्रह्लाद के विपदनाश के समान इच्छा करने पर वे भी ब्रह्मशाप का खण्डन कर सकते थे, किन्तु उन्होंने अपने भजन को श्रीकृष्ण पादपद्म प्राप्ति के लिए ही नियोग किया था, इसलिए सप्ताह काल तक श्रीमद् भागवत कथा श्रवण करने के बाद तक्षक ने आकर उन्हें डस लिया। यह विशुद्ध-भक्ति का ही कार्य हैं भक्ति की किसी शक्ति को देह-दैहकादि व्यवहारिक विषयों में प्रयोग करना किसी शुद्ध भक्त का कर्त्तव्य नहीं है। अतः महानुभाव-लक्षण युक्त आधुनिक भक्तगण में यदि रोग-शोकादि नानाप्रकार की

Scanned with CamScanner

विपत्ति देखी जाय तो भी उनमें अविश्वास करना कर्त्तव्य नहीं है। अर्थात् प्रह्लाद आदि महानुभव भक्तगण ने भक्ति के प्रभाव से निखिल बाधा-बिपत्ति पर विजय प्राप्ति की थी, और यह यदि बिपत्ति का नाश नहीं कर पा रहे है तो यह उत्तमभागवत नहीं हैं इस प्रकार का अविश्वास करना कर्त्तव्य नहीं है। अथवा कोई महानुभव भक्त भक्ति के प्रभाव से समस्त वाधा बिघ्न का विनाश किये है देखकर 'यह शुद्धभक्त नहीं हैं' यह विश्वास करना भी अनुचित है। किसी कारण से किसी भक्त-विशेष में उपासना के वैशिष्टय के अनुसार उनकी अप्रार्थित अथवा अज्ञात भाव से पूर्ववर्णित भक्ति के आनुसंगिक फलसमूह का उदय हो जाता है। जिस प्रकार ध्रुव चरित्र में वर्णित है-

"यदैकपादेन स पार्थिवात्मज
स्तस्थौ तदंगुष्ठनिपीड़िता मही।
ननाम तन्नार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता,
तरीव, सव्येतरतः पदे पदे॥" (भा: ४/८/७६)

अर्थात् श्रीहरि की आराधानरत ध्रुवमहाशय जब एक पैर से खड़े हुए, तो उनके अँगूठे के भार से आधी पृथ्वी एक ओर इस प्रकार झुक गई जैसे किसी गजराज के नाव पर चढ़ जाने से नाव पद पद पर दाँई और बायी ओर डगमगाने लगती है। इस स्थल पर श्रील ध्रुव महाशय सर्वतोभाव से विष्णु समाधिस्थ होकर उनके अप्रार्थित भाव से ही इस प्रकार फलोदय

Scanned with CamScanner

हुआ था, जानना चाहिए। श्रीलध्रुवमहाशय भविष्य में ज्योतिर्मन्डलात्मक ध्रुवलोक के परिचालक-पद पर अधिरूढ़ होंगे इसलिए तदुपयोगी उपासना का उदय हुआ था। ध्रुवलोक ज्योतिश्चक्र का मेधी है जिसके चारो ओर ग्रह नक्षत्र आदि घूमते रहते है। इसलिए उपासना काल में इस प्रकार फलोदय देखा गया था।

भगवन्निष्ठा के च्युतिकारक कृष्णेतर वस्तु में अभिनिवेश—श्रीभगवत्-विषयक निष्ठा के विच्युतकारक कृष्णेतर बस्तु के अभिनिवेश का द्रष्टात्त प्रदत्त है—"एवमघटमानमनोराथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्ध-कर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशित: स योगतापसो भगवदाराधन-लक्षणाच्च।" (भा: ५/८/२६) राजर्षि श्रीभरत ने यौवनकाल मे ही दुस्त्यज स्त्री, पुत्र, राज्य-सम्पदादि की आसक्ति त्यागकर पुण्यतीर्थ पुलहाश्रम में जाकर भगवदाराधना में आत्मनियोग किया था। एक बार श्री भरत पुण्यसलिला महानदी गण्डकी में स्नान और नित्य-नैमित्तिक कर्मादि समापन कर प्रणव जपकर रहे थे; इस अवसर पर एक पूर्णगर्भा हरिणी नदी पर जलपान के लिये आई उसी समय पास में ही एक सिंह ने भयंकर गर्जन किया। इसे सुनकर प्राणभय से हरिणी ने अत्यन्त वेग से कूदकर नदी पार की। तेजी से कूदने से गर्भस्थ शिशु गर्भच्युत होकर नदी के जल में बहने लगा। हरिणी ने भयभीता

Scanned with CamScanner

और गर्भ-यंत्रणा से कातर होकर प्राणत्याग दिये। श्री भरत करुणा से द्रवित होकर हरिणशावक को जल से उठा कर आश्रम ले आये और उसका लालन-पालन करने लगे। उस हरिण में आसक्ति के कारण क्रमशः उनकी भगवदाराधना विलुप्त हो गई। इस प्रकार असम्भव मानस-अभिनिवेश से मृगशावक रूप में प्रतिभासमान अपने आरव्ध कर्मफल से वे योगतापस भरत योगभृष्ट हो गये अर्थात् श्रीभगवदराधना से विच्युत होकर दिन रात हरिण शिशु की ही चिन्ता करने लगे। श्रीमद जीव गोस्वामिपाद ने लिखा है—"अत्रैव चिन्त्यं—भगवद भक्त्यन्तरायकं सामान्यमारव्धकर्म्म न भवतुमर्हति दुर्व्वल त्वात्। ततः प्राचीना पराधात्मकमेव तल्लभ्यत इन्द्रद्युम्नादीनामिवेति।" (भः सः १५७) यहाँ पर चिन्तनीय विषय यह है कि प्रारब्धकर्म कभी भी स्वरूप शक्ति की वृत्ति भक्ति के वाधा-विघ्नकारक नहीं हो सकते हैं। प्रारव्धकर्म अत्यन्त दुर्बल हैं एवं भक्ति अत्यन्त सबल है। मायाशक्ति का कार्य प्रारव्धकर्म कभी चित्शक्ति की वृत्तिरूपा भगवदभक्ति के ऊपर अपने प्रभाव का विस्तार नहीं कर पाता है। अतएव इन्द्रद्युम्न महाराज जिस प्रकार भगवदर्चना के समय आये हुए अगस्त्य मुनि का आदर न करने के अपराध से हाथी का जन्म प्राप्त किये थे, उसी प्रकार यहाँ पर भी किसी प्राचीन अपराध के फल से ही राजर्षि भरत का मृगदेह में अभिनिवेश के लिए भगवद भजन

Scanned with CamScanner

से विच्युति हुई समझना होगा। फिर कोई कोई यह भी कहते हैं कि श्रीभगवान एवं भगवद्भक्ति में उत्कण्ठा वृद्धि के लिए स्वयं श्रीभगवान ही साधारण प्रारब्धकर्म में ही जातरति भक्तगण के प्रति उस प्रकार का प्रावल्य प्रकाशित कर देते हैं। मृगदेह में श्रीभरत की वही उत्कण्ठा यथेष्ठ रूप में वर्णित हुई है। श्रीपाद देवर्षि नारद ने पूर्वजन्म में दासीपुत्र रूप में मुनिगण की कृपा से रतिलाभ की थी एवं भगवद्दर्शन लाभ भी किया था श्रीभगवान के अन्तर्धान के बाद जव व्याकुलप्राण से उनके पुनः दर्शन की प्रार्थना की थी, तो आकाशवाणी से श्रीभगवान ने उनसे कहा था—

"हन्तास्मिञ्जन्मनि भवान् मा मां द्रष्टुमिहार्हति।
अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम्॥
सकृद् यद् दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ
मत्कामः शनकैः साधु सर्व्वान् मुञ्चति हच्छयान्॥"
(भाः १/६/२२-२३)

"हे नारद! हाय! इस जन्म में तुम दुबारा मेरा दर्शन नहीं पाओगे। जिसकी कषाय (भोगवासना) का क्षय नहीं हुआ है, उस कुयोगीगण को मैं दर्शन-दान नहीं करता हूँ। तब भी मैने जो तुम्हें एकबार दर्शन दिया, वह मेरे प्रति तुम्हारी उत्कण्ठा की वृद्धि के लिए था। कारण यह है कि मेरे अनुराग के कारण भक्त समस्त कामनाओं का त्याग कर देते हैं।" उसी

Scanned with CamScanner

प्रकार यहाँ पर भी श्रील भरत महाशय की उत्कण्ठा या अनुराग की वृद्धि के लिए श्रीभगवदइच्छा क्रम से ही हरिणशिशु में आसक्ति वश उनका भगवद्भजन में व्यवधान उत्पन्न हुआ। उनका मृगदेह एवं ब्राह्मणदेह में उत्कण्ठा या अनुराग का यथेष्ट परिचय मिलता है। अतएव इन्द्रद्युम्न राजा का जिस प्रकार महदपराध के फल से हाथी जन्म में हथिनी एवं उसके बच्चों में आसक्ति उत्पन्न हुई—यह वास्तव में महदपराध का द्रष्टान्त है। कारण यह है कि कृष्णेतर जड़ीय वस्तु में आसक्ति ही महद अपराध की अनिवार्य परिणति है। राजर्षि भरत की हरिण शिशु में आसक्ति के फल स्वरूप जिस प्रकार उसके बाद के दो जन्मों में श्रीहरि में प्रवल अनुराग और भजनोन्नति का परिचय मिलता है, उस प्रकार भरत का यह आख्यान साधक जगत का एक विशेष शिक्षाप्रद विषय है। जो भरत यौवनकाल में ही दुस्त्यज मनोज्ञ स्त्री, गुणवान पुत्र और पृथ्वी के राज्य सम्पदादि को त्याग कर कठोर वैराग्य जीवन में एक तुच्छ हरिण शावक की-आसक्ति वश भगवद्भजन सम्पद से विच्युत हो गये थे, तो विश्व की सर्वापेक्षा आकर्षणीय और मोह की वस्तु कामिनी-काञ्चन की आसक्ति से साधक की कितनी बड़ी क्षति है यह साधक समाज के लिए विशेष विचारणीय विषय है। इस कारण भगवनिष्ठा या भजन के विच्युत-कारक कृष्णेतर समस्त वस्तुओं में अभिनिवेश को त्यागकर साधक

Scanned with CamScanner

को अत्यन्त सतर्कता के साथ सावधानी से भजन पथ पर अग्रसर होने के निमित्त ही साधु और शास्त्र का उपदेश है।

"भक्तिशैथिल्य"—भक्तिशैथिल्य या भजन शैथिल्य उत्पन्न होने से आध्यात्मिक आधिदैविक अधिभौतिकादि के सुख-दु:ख इत्यादि में निष्ठा प्रकाशित होती है। अर्थात् देह-दैहिकादि-विषयक सुख-दु:ख के अनुसन्धान में चित्त का आवेश देखा जाता है। जो भजन में तत्पर हैं उनका देह दैहिकादि के सुख दु:ख एवं भौतिक दैविकादि विघ्नों में चित्त का किसी प्रकार का आवेश नहीं होता है। वल्कि वे इन सव सुख-दु:खादि का समादर ही करते हैं। श्रीभगवत्पादपद्म शरणागत भक्त जानते हैं, उनके आध्यात्मिक आदि सुख-दु:ख सब श्रीहरि की-इच्छानुसार ही उनके पास आते हैं। श्रीभगवान प्राकृत सुख-दु:ख के घात-प्रतिघात से उनके भक्तिपथ को ही मजबूती प्रदान करते हैं। अतएव उनकी इच्छा का पालन करना ही उनका जीवातु (जीवन) है। उनकी भावना इस प्रकार की है—

"सुख: दु:ख यत, सकलि आमार, केवल तोमार दया।
एइ येन सदा, सुदृढ़-विश्वासे, थाकि कृपा पाने चाइया॥
दु:ख-प्रतिकार, वासना आमार, ना हय येन कखनो।
दु:खादिक हले, कृपाधिक्य वले, मानि येन अनुक्षण॥"

(साधुवाणी)

Scanned with CamScanner

तभी तो सहस्त्रनाम स्तोत्र में लिखा है–

" न वासुदेव भक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्ममृत्यु जराव्याधिभयञ्याप्युपजायते॥"

"श्री वासुदेव-भक्तगण का किसी प्रकार से भी अमंगल नहीं होता है। जन्म मृत्यु, जरा व्याधि इत्यादि से वे किसी प्रकार भयभीत या चिन्तित नहीं होते हैं। फिर भी यह देखा जाता है कि सतसाधकगण भी व्याधि इत्यादि से नीरोग एवं बचे रहने के लिए इच्छा करते रहते हैं? इसके उत्तर में कहा गया है– उनकी केवल उपासना वृद्धि के लोभ से ही मनुष्य-देह रक्षा की इच्छा रहती है। अर्थात् श्रवण-कीर्त्तनादि भजन में वे इस प्रकार का एक आस्वादन लाभ करते हैं कि उनके मन में आता है–"यदि और भी कुछ दिन स्वस्थ शरीर से बचा रह पाता, तो प्राणभर कर भजन कर धन्य हो जाता।" अतएव यह कामना भजन-विरुद्ध नहीं-वरन् भजन के अनुकूल ही है। केवल देह रक्षा के लिए वे बचना नही चाहते देह स्वस्थ रखना चाहते हैं बचे रहने के लिए और बचे रहना चाहते हैं भजन के लिए।

जहाँ देखा जाये, अपने हिताहित, विचार की सामर्थ्य यथेष्ट रूप से विद्यमान है, फिर भी भक्ति-तात्पर्य शून्य भजनशैथिल्य उपस्थित है, बीच-बीच में नियमित अनुष्ठित-भजन में भी भजन शैथिल्य का निवारण नहीं होता है; इसके

Scanned with CamScanner

होते हुए भी इसकेलिए स्वतन्त्रभाव से भजन का अनुष्ठान एवं अनुतप्त हृदय से श्रीभगवान् और महामहत्गण के निकट आकुलप्राण से भजन शैथिल्य निवृत्ति के लिए प्रार्थना अथवा उसके लिए चेष्ठा भी नहीं है—वहाँ पर निश्चय ही समझना होगा कि वह भजनशैथिल्य अपराध को आश्रय कर रह रहा है; इसलिए समझने की सामर्थ्य होते हुए भी वह भजन शैथिल्य निवृत्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता है। जहाँ पर अपराध अनुमान की प्रवृत्ति ही नहीं होती है इस प्रकार के मूढ़ किन्तु असमर्थ व्यक्ति मे अल्प भक्ति के अनुष्ठान से भी अपराध की निवृत्ति होकर सिद्धि लाभ हो सकती है। इस कारण मूढ़ और असमर्थ व्यक्तिगण के प्रति दीनदयाल श्रीभगवान की कृपा भी अधिक परिमाण में उदित होती है। विवेक-सामर्थ्य होते हुए भी अर्थात् जो समझते है कि—'यह मेरा अपराध हो गया या होगा एवं अपराध होने से भजन में विघ्न होगा ऐसा होते हुए भी जो अपराध उपस्थित होता है, वह किन्तु अतिशय दौरात्म्य से ही होता रहता है। और जहाँ देखा जाये कि अपराध समझने को क्षमता ही नहीं है, इस कारण अपराध हो रहा है, वह अपराध ही किन्तु अत्यन्त दौरात्म्य के कारण उपस्थित नहीं है। विवेक सामर्थ्ययुक्त व्यक्ति के अपराध का गुरुत्व एवं विवेकसामर्थ्य हीन के अपराध होते हुए भी सिद्धि का द्रष्टान्त दे रहे हैं—शतधनु राजा विवेकी और सामर्थ्यवान् थे। उन्हें

Scanned with CamScanner

कार्तिक पूर्णिमा को व्रतधारण पूर्वक गंगास्नान के बाद घर आने के समय एक वैष्णव निन्दक पाषण्डी के साथ सम्भाषण के फल से कुक्कुरादि की योनि प्राप्ति हुई थीं। बाद मे फिर राजपुत्र होकर जन्मग्रहण कर भजनसम्पद लाभ की थी—वह युक्ति युक्त ही है। दूसरी ओर मूढ़ चूहा, मदिरामत्त मानव इत्यादि के अपराध होते हुए जो भक्ति के आभास से ही सिद्धिलाभ हुआ था वह इससे पहले वर्णित हुआ है।

"**भजनाभिमान**"—भजन के समय यदि साधक में 'मैं बड़ा ही भक्त, भजनानन्दी, मेरे समान कोई भजन नहीं करता है'—इस प्रकार का अभिमान उदय होता है तो समझना चाहिए कि कोई प्राचीन अथवा अर्वाचीन अपराध ही इस अभिमान का कारण है! जिस कारण इस प्रकार के भजनाभिमान से साधक का भयंकर अनर्थ विशेष होता है। इस भजनाभिमान से साधक के चित्त में लाभ, पूजा, प्रतिष्ठा आदि की आकांक्षा जाग उठती है। श्रीमान् महाप्रभु ने श्री रूपशिक्षा में इन सब को भक्ति कल्पलता की उपशाखा की आख्या दी है—

"किन्तु यदि लतार अंगे उठे उपशाखा।
भुक्तिमुक्तिवाञ्छा यत-असंख्य तार लेखा॥
निषिद्धाचार कुटिनाटी जीवहिंसन।
लाभ प्रतिष्ठादि यत उपशाखागण॥
सेक जल पाञा उपशाखा वाढ़ि याय।

Scanned with CamScanner

स्तब्ध हञा मूलशाखा वाढ़िते ना पाय॥
प्रथमेइ उपशाखार करिये छेदन।
तवे मूलशाखा वाढ़ि याय वृन्दावन॥''

(चैः चः मध्य -१६ अध्याय)

यह भजनाभिमान इतना सर्वनाशकर है कि साधक के निकट यह अपने को भजन के तुल्य ही परिचय देता है, तथापि चोरावाली (नदी में वालु के ढेर) के तुल्य साधन नौका को रसातल में ले जाता है। फिर इस अपराध से उठे हुए अभिमान से वैष्णव-अवज्ञारूप अपराधान्तर की भी उत्पत्ति हो जाती है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में वर्णन है—दक्षप्रजापति का पूर्वजन्म में शिवनिन्दारूप अपराध था। द्वितीय जन्म में वे जब दक्ष नाम से ही अभिहित होकर उन्होंने प्रजापति की पदवी प्राप्त की, तो ब्रह्मा के आदेश से उन्होंने दस हजार प्रजा की सृष्टि कर उन्हें परमेश्वर की उपासना कर शक्तिलाभ पूर्वक प्रजा की सृष्टि के लिए आदेश दिये थे। उसी समय श्रीपाद देवर्षि नारद का उन्हें संग-लाभ हुआ, वे उनके उपदेश और कृपा से विषय वैराग्य और ऐकान्तिक भगवन्निष्ठा लाभ कर धन्य हुए यह संवाद पाकर दक्ष-प्रजापति श्रीमन्नारद के प्रति अतिशय कुपित हुए और फिर से प्रजा की सृष्टि न करने का संकल्प किया। अन्त में श्रीब्रह्माने उन्हें प्रबोध दान कर फिर से प्रजा-सृष्टि का आदेश किया और उन्होंने फिर एक सहस्र

Scanned with CamScanner

प्रजा-सृष्टि की, वे भी पितृ-आदेश क्रम से प्रजा सृष्टि के लिए तपस्या में प्रवृत्त होकर देवर्षि नारद के संग और कृपावशत: विषय वैराग्य लाभ कर ऐकान्तिक भक्त हो गये। प्रजापति दक्ष इस संवाद से नारद के प्रति क्रोध से अधीर हो गये। इस अवसर पर देवर्षि नारद दक्ष को भी उपेदश देकर भजन में प्रवृत्त कराने की अभिलाषा से उनके निकट आये तो दक्ष ने क्रोधावेश में उनकी बहुत प्रकार से भर्त्सना की उससे भी शांत न होकर 'एक स्थान पर नहीं रहोगे' कहकर श्राप दान किया—श्रीमन्नारद के निकट प्रजापति दक्ष के इस प्रकार अपराध की उत्पत्ति का कारण पूर्वजन्मकृत शिव निन्दारूप अपराध है। इससे समझा जाता है कि साधक का भजनाभिमान प्राचीन और आधुनिक सब प्रकार के अपराध उत्पत्ति का मूल कारण है।

साधक का प्राचीन अथवा आधुनिक यदि कोई अपराध न रहे, तो मात्र एकबार भजन करने से ही अर्थात् एकबार मात्र उच्चारित श्रीकृष्ण नामादि से ही जो भक्ति के फल प्रेम का उदय होता है यह बात जो कही गई है वह यथार्थ या वास्तविक है।

"एक कृष्ण नामे करे सर्व्वपाप नाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करने प्रकाश॥
प्रेमेर उदये हय प्रेमेर विकार।

Scanned with CamScanner

स्वेद-कम्प-पुलकादि गदगदाश्रुधार॥
अनायासे भवक्षय कृष्णेर सेवन।
एक कृष्ण नामेर फले पाइ एत धन॥
हेन कृष्ण नाम यदि लय वहु वार।
तवु यदि नहे प्रेम नहे अश्रुधार॥
तवे जानि अपराध ताहाते प्रचुर।
कृष्णनाम बीज ताहे न हय अंकुर॥"

(चै: च: आदि लीला-८ परि:)

मरण समय किन्तु जिस किसी प्रकार एक बार मात्र ही भजन की अपेक्षा है। जिसकी पूर्वजन्म या इस जन्म में भजनसिद्धि हुई है उसी के प्रति अपना प्रभाव-विस्तार कर मृत्युकाल में भजन स्फूर्ति सम्भवपर होती है, और बाद में भगवत् साक्षात्कार लाभ होता है। श्रीगीता मे भगवान ने तभी तो कहा है—

"यं यं वापि स्मरण भावं त्यजत्यन्ते कलेवरय्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदातद्भाव भावित:॥"

"हे कौन्तेय! अन्तिम काल में मानव जिस विषय की चिन्ता करते हुए देह त्यागता है सदा तदभाव भावित व्यक्ति उस उस विषय को ही प्राप्त होता रहता है। यहाँ पर 'सदातद्भाव भावित:' इस पद का तात्पर्य यह है कि—सर्वदा जिस जिस भाव से हृदय आविष्ट रहता है, अन्तिम काल में उस उस

Scanned with CamScanner

विषय की ही स्फूर्ति होती है। इस प्रमाण से भजनसिद्ध-व्यक्ति को ही अन्तिम काल में श्रीनामग्रहणादि भजनांग की स्फूर्ति होती है उसी की दृढ़ता सम्पादन की गई है। अतएव जिसे अंतिम काल में भजनांग का स्फुरण होता है, निश्चय ही उनका प्राचीन व आधुनिक कोई अपराध नही है। अपराध न हो तो भजन की पुनः पुनः आवृत्ति की अपेक्षा नही है। जिस प्रकार निरपराध अजामिल के अन्तिम काल में एकबार मात्र उच्चारित नामाभास से ही कृतार्थ होने की बात सुनी जाती है। यमदूतगण की किन्तु बहुनामादि श्रवण कर भी कृतार्थ होने की बात नहीं सुनी जाती है। इससे उनमें अपराध के अस्तित्व का प्रमाण पाया जाता है। अजामिल ने जो सिद्धिलाभ की थी, उनके वाक्य से ही यह प्रकाशित होता है—

"अथापि में दुर्भगस्य विवुधोत्तमदर्शने।
भवितव्यं मंगलेन येनात्मा मे प्रसीदति॥"

(भा: ६/२/३२)

यद्यपि मैं अति पापात्मा हूँ फिर भी इन देवश्रेष्ठगण के दर्शन से मेरा मंगल ही होगा—जिस कारण मेरा—चित्त प्रसाद लाभ हो रहा है।" इस श्लोक के "मंगलेन" शब्द की व्याख्या में श्रीधरस्वामीपादने "पूर्वजन्मसञ्चित महापुण्य" कहकर ही वर्णन किया है। अतएव निरपराध व्यक्तिगण के साधु

Scanned with CamScanner

महापुरुषगण की कृपा से भजनाभास से भी भगवद्धाम प्राप्ति हो सकती है, श्रीभद्भागवत में श्री अजामिल के चरित्र से वह दृढ़ आदर्श रूप से प्रमाणित हुई है। तब श्रीभरत महाशय के मृगदेह-त्याग के समय श्रीभगवन्नाम उच्चारण करके भी जो देहान्तर-प्राप्ति को बात जानी जाती है? अर्थात् श्री अजामिल को जिस प्रकार मृत्यु के समय नाभाभास से वैकुन्ठ लोक में भगवत प्राप्ति हुई थी, उसी प्रकार भरतमहाशय के मृगदेह में मृत्युकाल में-भगवन्नाम-उच्चारण करके भी वैकुन्ठ में भगवत्प्राप्ति न होकर फिर जन्मग्रहण क्यों करना पड़ा? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीजीवगोस्वामिपाद कहते हैं, श्रीभरत की देहान्तर प्राप्ति होकर भी उसी देह से साक्षात भगवत् प्राप्ति हुई थी। उनके समान महापुरुषगण के हृदय में सदा ही श्रीभगवान का आविर्भाव बना रहता है। इस प्रकार श्री अजामिल की भी हरिप्रिय-पार्षदगण के दर्शन-लाभ के बाद पाञ्च भौतिक पूर्वदेह जितने दिन रही, उतने दिन तक हृदय में निरन्तर भगवतस्मृति विराजित रही। अतएव मरणकाल में एकवार मात्र भजन से ही जो कृतार्थतालाभ हुई- इस विषय में कभी कोई व्यभिचार (संदेह) नहीं है। तभी श्रीशुकदेव मुनि ने महाराज परीक्षित के निकट श्री भागवतकथा के आरम्भ में ही अन्तिम काल में श्रीनारायण स्मृति को समस्त साधन का फल कहकर वर्णन किया है—

Scanned with CamScanner

"एतावान सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्म्म परिनिष्ठया।
जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥"
(भाः २/१/६)

अर्थात् "स्वधर्मनिष्ठा, सांख्य और योगद्वारा मरण काल में श्रीनारायण की स्मृति ही मानवगण के जन्मलाभ का चरमफल है।" इस श्लोक की व्याख्या में श्रीधर स्वामिपाद ने लिखा है,—सांख्य अर्थ से आत्मानात्म विवेक, योग कहने से अष्टांगयोग एवं स्वधर्म परिनिष्ठा इत्यादि साधन का साध्य श्रीनारायण की स्मृति है। अन्तिम समय में श्रीनारायण की स्मृति परम लाभ है। अर्थात् अन्तिम समय में श्रीनारायण की स्मृति की महिमा वर्णन में कोई समर्थ नहीं है। श्रीभगवन्नाम कौमुदीकार भी लिखते हैं—अन्तिम काल में श्रीनारायण की स्मृति निखिल साध्य से भी परमश्रेष्ठ है।

"**प्रेम प्रसु शुद्धभक्ति की शास्त्रीय संज्ञा**"—यह प्रेमजनिका शुद्धभक्ति शास्त्र में केवला, अनन्या, ऐकान्तिकी, अकिञ्चना, निष्कामा, स्वरूपसिद्धा इत्यादि नामों से अभिहिता (जानी जाती) है। यह भक्ति अन्यनिरपेक्ष है और विशुद्ध स्वरूप के कारण इसकी अनन्यता है। यथा—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्य्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥"

Scanned with CamScanner

"येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता:।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्य विधि पूर्व्वकम्॥"

(गीता- ६/२२-२३)

"जो अनन्यभाव से निरन्तर मेरी चिन्ता करते हुए सम्यक रूप से उपासना करते है उन नित्याभियुक्त-भक्तगण का योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) एवं क्षेम (प्राप्त वस्तु का रक्षण) मै ही मस्तक पर वहन करता रहता हूँ। जो श्रद्धा पूर्वक अन्य देवता की उपासना करते है वे भी अविधि पूर्वक मेरी ही उपासना करते है। यहाँ पर अविधि-शब्द का अर्थ—जिस भाव से उपासना करने से संसारमुक्ति (श्रीधर) और मुझे लाभ किया जाय, (श्री विश्वनाथ) उस भाव से उपासना नहीं करते हैं।" इन दो अव्यवहित वाक्यों के द्वारा अन्वय (विधिमुखे) और व्यतिरेक (निषेध मुखे) उक्ति से अनन्यभक्ति से अन्य देवता की उपासना त्यागकर भगवत भजन का ही उपदेश प्रदान किया गया है। श्रीमद्भागवत में दृष्ट है –

"यथातरोर्मूल निषेचनेन,
तृप्त्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखा:।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥"

(४/३१/१४)

"जिस प्रकार वृक्ष के मूल मे जलसेचन करने से वृक्ष

Scanned with CamScanner

के स्कन्ध, शाखा, उपशाखा इत्यादि तृप्ति अथवा सजीवता लाभ करते है, अन्नादि भोजन द्वारा प्राण को आहार देने से जिस प्रकार प्राण और इन्द्रिय समूह परितृप्ति लाभ करते हैं, उसी प्रकार एकमात्र श्री अच्युत की उपासना द्वारा ही सभी देवताओं की उपासना हो जाती है।" जिस प्रकार वृक्ष के मूल में जल सेचन न कर शाखा प्रशाखा में जल सेचन करने से वृक्ष एवं शाखा प्रशाखा किसी को भी तृप्ति नहीं होती है उसी प्रकार श्री अच्युत की सेवा त्याग और अन्यान्य देवी-देवता की सेवा से श्रीअच्युत और अन्यान्य देव-देवी किसी को भी तृप्ति नहीं होती है। यदि कहा जाय कि वृक्ष के मूल में जल सेचन करने से शाखा प्रशाखा में भी जल सेचन करते देखा जाता है, श्रीअच्युत की सेवा करने से अन्यान्य देवता की सेवा से अनन्य भक्ति की हानि की बात क्यों कही जाती है? इसलिए उल्लिखित श्लोक में दूसरे द्रष्टान्त को प्रदत्त किया जा रहा है। प्राण को आहार देने से प्राण और समस्त इन्द्रियों की परिपुष्टि साधित होती है; प्राण को आहार देने से अर्थात अन्नादि भोजन करने से यदि चक्षु-कर्णादि पृथक इन्द्रियों को भी आहार दिया जाता है, तो चक्षु अन्ध और कर्ण वधिर हो जाता है। उसी प्रकार श्रीकृष्ण-सेवा कर अन्यान्य देव-देवी की सेवा से अनन्यभक्ति की हानि होती है। इस अनन्यभक्ति की प्रशंसा में श्रीकृष्ण कहते हैं—

Scanned with CamScanner

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥"
(गीता-६/३०)

"जो अनन्यभाव से अर्थात् अन्य देवता की उपासना त्याग कर एकमात्र मेरी ही उपासना करता है, उसे सुदुराचारी होते हुए भी साधु ही मानना होगा, क्योंकि वह मेरी भक्ति में सम्यक प्रकार से निश्चयवुद्धि वाला है।" इस श्लोक में 'अपि' शब्द के द्वारा दुराचार का हेयत्व-प्रतिपादन कर केवल अनन्यभक्ति की महिमा व्यक्त हुई है। श्रीमद्भागवत मे यह साक्षात् भक्ति का ही महादुर्जेयत्व-वर्णित है। यथा—

"धर्मं तु साक्षाद्भगवत प्रणीतं,
न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः ,
कुतश्च विद्याधरचारणादयः॥" (भाः ६/३/१६)

धर्मराज यम ने अपने दूतगण से कहा—"साक्षात् भगवान कर्तृक प्रवर्तित धर्म किन्तु ऋषिगण, देवगण, सिद्धमुख्यगण, असुरगण, मनुष्यगण नहीं जानते हैं, विद्याधर चारण यदि नहीं जानते है इस बारे में और क्या कहूँगा?" फिर इस भक्ति का महादुर्लभत्व भी वर्णित है—

"येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना,
ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म्म यत्र।

Scanned with CamScanner

नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य,
सम्मोहिता विततया वतमायया ते॥"
(भा: ३/१५/२४)

श्री ब्रह्मा ने सनकादि ऋषिगण से कहा है, "हे वत्सगण! जिस मानव जन्म से धर्म के सहित तत्त्वज्ञान लाभ किया जा सकता है, उस मेरे भी प्रार्थित मानव जन्म को पाकर भी जो श्रीहरि की आराधना नहीं करते हैं उनके लिए बड़ा ही खेद है। वे श्रीहरि की माया से नितान्त विमोहित हैं।" इस श्लोक की सारार्थ दर्शिनी टीका में लिखा—ब्रह्मा भी प्रार्थना करते हैं,— "हा हन्त भारतभूमौ कदा नृजनुषो भूत्वा वयं कृष्णं भजन्तः क्षणमात्रणैव बैकुन्ठं प्राप्नुयामः।" 'हाय ! कब मैं भारतवर्ष में मनुष्य योनि में जन्मग्रहण करूँगा जो क्षणकाल श्रीकृष्ण भजन करने से श्री वैकुन्ठधाम प्राप्त होगा।' इससे ब्रह्मादि की प्रार्थना के कारण भक्ति का दुर्लभत्व-वर्णित हुआ है।

पूर्ववर्णित सिद्धान्तानुसार श्रवण कीर्तनादि रूपा साक्षात् भक्ति के सर्वविघ्न विनाश पूर्वक श्रीभगवान से प्रेम दान की सामर्थ्य एवं दुर्लभत्व होते हुए भी जो भक्तिभिन्न अन्य कामना से भजनानुष्ठान करते हैं, वह शास्त्र में अभिधेय या आवश्यक कर्त्तव्य के रूप में निर्दिष्ट नहीं है। इस अभिप्राय से ही श्रीमद्भागवत में वर्णित है—

Scanned with CamScanner

"तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया।
एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत् पादमूलं विना वहिः॥"
(भा: ४/२४/५५)

"हे भगवान्! सुदुर्लभा एकान्तभक्ति-सहकार से साधुगण की भी दुराराध्य आपकी आराधना कर कौन व्यक्ति आपके पादमूल को छोड़ अन्य स्वर्गादि विषयों की कामना करेगा?" केवल भक्तिमात्र की कामना से भक्ति का अकिञ्चनत्व और अकामत्व ज्ञापित हुआ है। श्री ऋषभदेव अपने पुत्रगण के प्रति कहते हैं "—

"मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्
स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित।
येषां किमु स्यादितरेण तेषा,-
मकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम्॥"
(भा: ५/५/२५)

"जो स्वर्ग और मोक्षफल के अधिपति परमपुरुष मेरे निकट कुछ भी कामना नहीं करते हैं, उस प्रकार के अकिञ्चन मेरे भक्तगण का अन्य देवता के पास क्या प्रार्थनीय हो सकता है?" यह विशुद्धा भक्ति जिस प्रकार अनन्या, अकिञ्चना एवं अकामा-संज्ञा से जानी जाती है, उसीप्रकार 'एकान्तिता' शब्द से भी कही जाती है। श्रीगजेन्द्र ने श्रीभगवान की स्तुति के प्रसंग में कहा है—"एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये

Scanned with CamScanner

वै भगवत्प्रपन्ना:"(भा: ८/३/२०) "जो श्रीभगवान के शरणागत एकान्तभक्त हैं वे उनके निकट किञ्चित् मात्र भी कामना नहीं करते हैं।" श्रीनारद भी श्रीयुधिष्ठर के प्रति कहते हैं–

"एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोक प्रलोभनै :।
एकान्तित्वाद भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तम:॥"
(भा: ६/६/५५)

"हे राजन्! भगवान् श्रीनृसिंहदेव द्वारा लोकप्रलोभन-कारी वरसमूह से प्रलोभित होकर भी श्रीप्रह्लाद एकान्तीभक्त होने के कारण उससे प्रलुव्ध नहीं हुए।" इस प्रकार निष्काम भक्तगण ही 'एकान्ती' नाम से जाने गये वह इन दो श्लोकों की उक्ति से प्रमाणित हुआ। इसलिए गरुड़ पुराण में एकान्ती भक्त के लक्षणों के बारे में वर्णन है–

"एकान्तेन सदा विष्णौ यस्मादेव परायणा:।
तस्मादेकान्तिन: प्रोक्तास्तद्भागवत-चेतस:॥"

"भगवत-भावाविष्ट-चित्तभक्तगण सर्वदा श्रीहरि-विषय में तत्पर रहते हैं, इसलिए वे ही 'एकान्ती' नाम से अभिहित होते हैं।" सर्वनिरपेक्ष मूलक तदैकनिष्ठत्वरूप एकान्तिता चतुर्विध है। (१) धर्म का अनादर (२) कर्म ज्ञानादि की सर्वथा निरपेक्षता (३) बिघ्नव्याकुलत्व से भी रतिपरता (४)प्रेमैकपरता। (ह: भ: वि- १०/५६-८१) फलकामी भक्तगण की अपेक्षा श्रीहरि की आराधन पर भक्तगण

Scanned with CamScanner

ही श्रेष्ठ कहे जाने से 'एकान्ती'—क्योंकि वे एकमात्र पारमार्थिक- वस्तु मे ही निष्ठावान् हैं। फिर इस प्रकार के एकान्तिगण-में व्रजेन्द्र नन्दन स्वरूप में अनुरक्त चित्त भक्तगण हीश्रेष्ठ हैं। जिस कारण उनके तीव्रानुराग से श्री हरि को अतिशय वश्यता-स्वीकार हुई है। यह एकान्तीभक्ति ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति उपदेश की है।

"भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥"

(श्रीगीता-११/५४-५५)

" हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्ति के द्वारा ही भक्त इस विशिष्ट रूप वाले मुझ को तत्त्वतः जानने में, प्रत्यक्ष देखने में, एवं आश्रय करने में समर्थ होते हैं। हे पाण्डव! जो मेरे लिए ही कर्म करते हैं अर्थात् मेरा श्रवण कीर्तनादि करते है मैं ही जिसका 'परम' अर्थात् साधन और साध्य रूप से एकमात्र आश्रय, अतएव अन्य साधन और साध्य के संगवर्जित, जो मेरा भक्त, सर्वत्र आसक्ति शून्य, सर्वभूतों में वैरभाव से रहित है, वह अनन्यभक्ति युक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।"

श्रीमद्भागवत में भी देखा जाता है—

"तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्म्माश्च यदपाश्रयाः।

Scanned with CamScanner

भजतानीहयाऽऽत्मानमनीहं हरिमीश्वरम्॥''

(भा: ७/७/४८)

श्रीप्रह्लाद महाशय भी असुरबालकगण के प्रति इस भक्ति का ही उपदेश देते हैं—''हे दैत्य बालकगण! धर्म, अर्थ काम जिसके आश्रय से ही विद्यमान, अर्थात् जिसकी निष्काम भक्ति के अनुष्ठान से धर्म, अर्थ, काम उसके अनुगत होकर स्वयं ही उससे मिल जाते है—अतएव धर्म, अर्थ काम की कामना न रखकर निष्काम भाव से उस कामनाशून्य-परमात्मा श्री हरि की उपासना करो।'' श्री प्रह्लाद महाशय ने स्वयं ही श्री नृसिंहदेव के निकट आराध्य और आराधक की कामना शून्यता की बात कही है।

"आशासानो न वै भृत्य: स्वामिन्याशिष आत्मन:।
न स्वामी भृत्यत: स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिष:॥
अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रय:।
नान्यथेहावयोरर्थो—राजसेवकयोरिव॥"

(भा: ७/१०/५-६)

''हे नाथ! जो स्वामी के निकट स्वार्थ-कामना करें वे वस्तुत: भृत्य नहीं हैं, और जो स्वामी भृत्य के पास प्रभुत्व की कामना करे भृत्य को सुख सम्पदादि दान करे वे भी वस्तुत: प्रभु नही हैं। किन्तु मैं आपका निष्काम सेवक हूँ एवं आप भी प्रभुत्व-लाभ में निस्पृह, अतएव हमारा प्रयोजन राजा

Scanned with CamScanner

और भृत्य के प्रयोजन के समान परस्पर के स्वार्थ स्वरूप नहीं है।" श्रीप्रह्लाद ने श्रीनृसिंहदेव से और भी कहा है—

"नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो,
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं,
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥"

(भाः ७/६/११)

मेरे प्रभु अपने भक्तगण से मान या पूजा नहीं चाहते हैं, कारण वे "निजलाभपूर्णः" अर्थात् निजभक्त को पाकर ही वे परम संतुष्ट हैं। पिता जिस प्रकार पुत्र को पाकर ही संन्तुष्ट है, पुत्र ने पिता का सम्मान या पूजा की, या नहीं, उससे पिता किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं करता है, उस प्रकार। अपने भक्त के निकट से पूजा न चाहने का कारण उल्लेख कर रहे हैं—इसका कारण वे करुण है। प्रभु की पूजा करने के लिए भक्त का जो प्रयास या परिश्रम है वह सहने में वे असमर्थ हैं। वह भक्तगण किस प्रकार के हैं उसका परिचय दे रहे हैं— अविदुषः अर्थात् अज्ञ। पिता के निकट वालक के समान निज प्रभु के सम्मुख भक्त कुछ भी नहीं जानता है। यहाँ भक्त को अज्ञ कहने का उल्लेख करना दैन्योक्ति है। कारण यह है कि प्रह्लाद की स्वयं भी तो भक्तगण में ही गणना होती है। भक्त का श्रीभगवान में गाढ़ आवेश रहने के लिए निजप्रभुभिन्न वे और

Scanned with CamScanner

कुछ भी नहीं जानते हैं। उभय पक्ष की व्याख्या से श्रीभगवान के कारुण्य के कारण का ही उल्लेख किया गया है। तो क्या भक्तजन अपने प्रभु की पूजा ही न करे ? इस आशंका से कहा है वे भक्तजन श्रीभगवान को जो जो सम्मान विधान करते हैं—वे सब अपने स्वार्थ के लिए ही होते हैं। निष्किंचन भक्तगण की अपने सुख के प्रति कोई अपेक्षा नहीं रहती है। अपने प्रभु के सुख से ही अपने को सुखी मानते हैं इसलिए उनका सम्मान ही करते रहते हैं। प्रभु के सुख से स्वयं के सुख का अनुभव करना तदैकजीवन भक्त के पक्ष में युक्तियुक्त ही है। इस विषय का दृष्टान्त दे रहे हैं—'प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः' मुख पर जो तिलकादि-शोभा रचना की जाती हैं— वही प्रतिमुख में अर्थात् दर्पणादि में प्रतिविम्वित मुख में शोभा के लिए होती है। अतएव श्रीप्रह्लाद महाशय ने असुरबालकगण के प्रति कहा—

"नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः।
प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता॥
न दानं न तपो नेज्या न शौचं न वृतानि च।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद् विडम्बनम्॥"
(भा: ७/७/५१-५२)

"हे असुर बालकगण! ब्राह्मणत्व, देवत्व, ऋषित्व, सद्वृत्ति, बहुशास्त्रादि ज्ञान, दान, तपस्या, यज्ञ, शौच, वहुव्रत

Scanned with CamScanner

इत्यादि श्रीभगवान की प्रीति-उत्पादन में समर्थ नहीं है; श्रीहरि एकमात्र निष्काम-भक्ति के द्वारा ही सन्तोष लाभ करते हैं। सकामभाव से अनुष्ठित सभी साधन ही विडम्बना अर्थात् अभिनय मात्र है।'' सकामभाव से उल्लिखित अन्यसब साधन ही जिस प्रकार विडम्बना या अभिनय मात्र, उसी प्रकार सकाम भक्त का भी भक्ति अनुष्ठान अभिनय मात्र है। कारण यह है कि उसमे स्वार्थसाधन के उद्देश्य से रहना भक्ति का अनुकरण मात्र ही किया जाना है। जिस प्रकार नाटक के नटगण राम-रावणादि से भिन्न होकर भी उनका अनुकरण करते रहते हैं, उसी प्रकार सकाम-साधक का भजनानुष्ठान भजन का अनुकरण मात्र ही है। यह सकामभाव ऐहिक और पारलैकिक भेद से दो प्रकार का है। यह द्विविध सकाम-मार्ग ही शुद्धभक्ति मार्ग में निषिद्ध है। श्रीनाग पत्निगण ने श्रीकृष्ण की स्तुति प्रसंग में कहा है—

"न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं,
न पारमेष्ठयं न रसाधिपत्यं।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा,
वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः॥" (भाः १०/१६/३७)

''जिनकी चरणरज में प्रपन्न एकान्त भक्तगण स्वर्गीय सुख, पृथ्वी का राज्य, परमेष्ठिपद, रसातल का आधिपत्य, योग सिद्धि यहाँ तक कि मोक्षसुख तक की भी कामना नहीं

Scanned with CamScanner

करते हैं।'' अतएव वैवस्वत्मनु पुत्र पृषध्र यद्यपि मुमुक्ष थे, फिर भी उनको एकान्ती कहा गया है यह किन्तु गौणी है। प्रह्लाद महाशय की उक्ति से इस प्रकार की विरुद्धभंगी देखी जाती है–

"मा मां प्रलोभयोत्पत्त्याऽऽसक्तं कामेषु तैर्वरैः।
तत्संगभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः।।"
(भा: ७/१०/२)

''हे प्रभो! जन्म के साथ साथ विषयभोग वासना से आसक्तचित्त मुझको उस समस्त भोग सम्पादक-वर राशि से और प्रलोभित न कीजिए। मैं विषय संग से एकान्त भीत होकर मुक्ति की कामना से आपके श्रीचरणों मे आश्रय ग्रहण करता हूँ।'' उल्लिखित श्लोक में 'मुमुक्ष' पद का अर्थ भोग वासना-त्याग की इच्छा ही समझना होगा। अर्थात् मैंने सर्वप्रकार भोगवासना-त्यागेच्छु होकर ही आपके श्रीचरणों मे आश्रय ग्रहण किया है। मुमुक्ष शब्द का इस प्रकार का अर्थ ही यहाँ पर सुसंगत है। जिस कारण श्रीप्रह्लाद महाशय स्वयं ही श्रीनृसिंहदेव को कहे थे–

"यदि रासीशमे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामनां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥"
(भा: ७/१०/७)

हे वरदश्रेष्ठ! आप यदि मुझे अभीष्ट-वरप्रदान की

Scanned with CamScanner

इच्छा करते हैं, तो इस वर की प्रार्थना करता हूँ कि आप के वर दान के निमित्त प्रलोभित करने पर भी मेरे हृदय में किसी प्रकार की भोग वासना का उद्धेक न हो।'' देवर्षि नारद ने भी श्रीयुधिष्ठिर महाराज को यही बात कही थी–

"भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्भकः।
मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह॥"

(भा: ७/१०/१)

अर्थात् ''हे राजन्! उस बालक प्रह्लाद ने इस सब कामना-वासना को भक्ति योग की बाधा (बिघ्न) मान कर हँसते हँसते श्री नृसिंहदेव से यह कहा था।'' इससे भी भोगवासना जो भक्ति योग की बाधा (बिघ्न) है यह जाना गया। विशुद्धभक्त श्री अम्बरीष महाराज के यज्ञ अनुष्ठान को भी लोक संग्रह के निमित्त ही समझना होगा। इसी कारण श्री अम्बरीष को लक्ष्य करके ही श्री पाद शुकदेव मुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा था–

"तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम्।
एकान्त भक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम्॥"

(भा: ६/४/२८)

''भगवान श्रीहरि ने महाराज अम्बरीष के एकान्त भक्ति भाव प्रीति के कारण शत्रुगण के भयानक आक्रमण से भक्त रक्षण मे समर्थ श्रीसुदर्शन चक्र को उनकी रक्षा मे

Scanned with CamScanner

नियोग किया था।" इससे श्रील अम्बरीष महाराज का ऐकान्तित्व स्पष्टभाव से ही उल्लेख हुआ है। शुद्ध भक्ति की हानिकारक ऐहिक और पारलौकिक सकामत्व की बात कही जा चुकी है। उसमे भी इस लोक का सकामत्व साधक को विशेष ध्यानपूर्वक त्याग करना होगा। भक्ति या भजन द्वारा अपनी जीविका एवं प्रतिष्ठादि-अर्जन, लालसा शून्यता को यहाँ ऐहिक निष्कामत्व के रूप में समझना होगा। अपने भजन द्वारा जीविका-निर्वाह, किम्वा लोक समाज में प्रतिष्ठा-अर्जन की चेष्टा करना ऐहिक-कामना में परिगणित है एवं साधकगण के पक्ष में विशेष सावधानी से वर्जनीय है। क्योंकि—

"सर्व्वत्यागेऽप्यहेयायाः, सर्व्वानर्थभुवश्च ते।
कुर्य्यः प्रतिष्ठाविष्ठाया यत्नम स्पर्शने वरम्॥"
(हः भः विः ८०/३७०)

जो सव त्याग चुके हैं उनके पक्ष में भी निखिल अनर्थ-प्रसु इस प्रतिष्ठाशा को त्याग करना अत्यन्त कठिन है। इसलिए जिससे इस प्रतिष्ठाशा को स्पर्श न करना पड़े, साधक को विशेष यत्न करने की आवश्यकता है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामिपाद भी लिखते हैं—

"प्रतिष्ठाशा-धृष्टा श्वपच रमणी में हदि नटेत्
कथं साधु प्रेमा स्पृशति शुचिरे तन्नु मनः।

Scanned with CamScanner

सदा त्वं सेवस्य प्रभुदयित-सामन्त मतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः॥"

(श्रीमनः शिक्षा-४)

"हे मन! प्रतिष्ठाशा रूप धृष्टा श्वपचरमणी मेरे हृदय में नृत्य कर रही है। पवित्र साधुप्रेम उस हृदय को किस प्रकार स्पर्श करेगा? तुम श्रीकृष्ण के अति प्रिय और अतुलनीय सामन्त या सेनापतिरूप महत की सेवा करो, जिससे वे शीघ्र ही इस चाण्डालिनी को हृदय से निष्कासित कर साधुप्रेम को हृदय में प्रविष्ट करायें।" भक्ति को जीविकोर्पाजन का साधन न कर एवं प्रतिष्ठादि के वासना शून्य होने से ही निष्काम भक्त की संज्ञा दी जा सकती है। श्री गरुड़पुराण में लिखा है—'विष्णु नोपजीवति' जो व्यक्ति विष्णु को जीविका निर्वाह का साधन न बनाये, वही व्यक्ति विशुद्धभक्त-संज्ञा से अभिहित है। श्रील प्रह्लाद महाशय ने भी श्रीनृसिंहदेव की स्तुति-प्रसंग में कहा है—

"मौन व्रत श्रुततपोऽध्ययनं स्वधर्मव्याख्यारहो
जप समाधय आपवर्ग्याः।
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेद्रियाणां वार्ता
भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम्॥"

(भाः ७/६/४६)

हे नाथ! मौन, व्रत, वेदपाठ, तपस्या, अध्ययन,

Scanned with CamScanner

स्वधर्मपालन, शास्त्र व्याख्या, निर्जन वास, जप और समाधि – यह दस धर्म यद्यपि मोक्षप्राप्ति के कारण के रूप में प्रसिद्ध हैं, तथापि अजितेन्द्रियगण के यह प्राय: जीविका-निर्वाह के कारण हो जाते है। अभिमानीगण के तो जीविका-निर्वाह के कारण भी नहीं होते हैं—क्योंकि दम्भ का फल अनिर्दिष्ट है। इसलिए देवराजइन्द्र ने माता अदिति के प्रति कहा है–

"आराधनं भगवत ईहमाना निराशिष:।
ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशला: स्मृता:॥"
(भा: ६/१८/७४)

"हे मात:! जो निष्काम भाव से श्रीभगवान की आराधना करते हैं, यहाँ तक कि प्रभु के निकट मोक्षतक की कामना नहीं करते हैं, वे ही यथार्थ स्वार्थ-साधन-चतुर है।" इसलिए "नालं द्विजत्वं" इत्यादि श्लोक में जो कहा गया–'एकमात्र अहैतुकी भक्ति से ही श्रीभगवान सन्तुष्ट हो जाते हैं—यह उक्ति अतिसुन्दर ही हो रही है।

''सर्वशास्त्र का सार उपदेश नवविधा भक्ति''– अन्याभिलाषिता शून्या, ज्ञान-कर्मादि से अनावृता, आनुकूल्य सहित श्रीकृष्णानुशीलन-रूपा केवला, अनन्या, ऐकान्तिकी, उत्तमा भक्ति ही जो सर्वशास्त्र का सार या श्रेष्ठ उपदेश है, श्रील प्रह्लाद महाशय ने उसे अपने पिता हिरण्यकशिपु को

Scanned with CamScanner

कहा था।

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सरव्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥"

(भाः ७/५/२३)

"हे पिता! जो पुरुष श्रीविष्णु के श्रवण, कीर्तन, स्मरण उनका पादसेवन, अर्चन, वन्दन, उनका दास्य, सख्य और उन्हें आत्मसमर्पण—यह नवलक्षणा भक्ति श्री विष्णु को समर्पण कर साक्षात्भाव से अनुष्ठान करता है उसके अध्ययन को ही मैं उत्तम अध्ययन मानता हूँ।" इस श्लोक के श्रवण, कीर्तन, और स्मरण यह तीन अंग श्रीविष्णु के नाम, रूप, गुण, लीला एवं परिकरादि के सम्बन्ध में ही समझने होंगे। 'पादसेवन' अर्थ से श्रीविष्णु की परिचर्या, 'अर्चन' कहने से विधिविहित उनकी पूजा, 'वन्दन' अर्थ से नमस्कार, दास्य कहने से मैं श्रीभगवान का दास यह अभिमान, सख्य अर्थ से बन्धुभाव से उनकी हित कामना, 'आत्मनिवेदन' कहने से बिक्री किये हुए गाय, अश्व आदि के समान निज देहेन्द्रिय-समुदय श्रीविष्णु की सेवा के निमित्त उनको समर्पण। जिस प्रकार गाय, अश्व आदि किसी को बेच देने पर वह फिर उसी के काम आते हैं, बिक्री करने वाले का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है,

Scanned with CamScanner

उसी प्रकार श्री भगवान की सुखानुकूल्य से उनके भजन (सेवा) के लिए देहेन्द्रिय आदि शुद्ध आत्मा पर्यन्त उनको समर्पण करने का नाम 'आत्म-निवेदन' है। जिस प्रकार गो-अश्वादि विक्रय करने पर उसके पालन-पोषण की चिन्ता क्रेता ही को करनी पड़ती है उसी प्रकार देह के भोजन, रक्षा आदि की भी चिन्ता नहीं करनी होती है। इस नवविधा-भक्ति का उदाहरण प्राचीनगण इस प्रकार देते हैं। यथा—

"श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्त्तने।
प्रह्लादः स्मरणे तद भजने लक्ष्मीः पृथु पूजने॥
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दासोथ सख्येर्ज्जुनः।
सर्व्वस्वात्मनिवेदने वलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम॥"
इति।

"श्रीविष्णु के श्रवण से परीक्षित, कीर्तन से श्रीशुकदेव, स्मरण से श्री प्रह्लाद, पादसेवन से श्री लक्ष्मीदेवी, पूजा से श्रीपृथु, वन्दन से श्री अक्रूर, दास्य से श्री हनुमान, सख्य से श्रीअर्जुन एवं सर्वस्व आत्मनिवेदन से श्री वलिमहाराज प्रधान थे एवं इन सभी को ही वस्तुतः श्रीकृष्ण प्राप्ति हुई थी।" 'यह श्रवण कीर्तन आदि जिसके नौ लक्षण हों वह भक्ति यदि भगवत विषयका हो एवं कर्मादि अर्पणरूपा पारस्परिकी न होकर साक्षातरूपा हो और श्रीविष्णु को ही अर्पिता हो, अर्थात श्रीविष्णु के सुख के लिए ही इस श्रवण-कीर्तिनादि-लक्षणा-

Scanned with CamScanner

भक्ति का अनुष्ठान करता है—इस प्रकार की भावना हो, किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष किसी एक के लाभ के उद्देश्य से अर्पिता न हो–तो वह कर्ता जो अध्ययन करता है, उस अध्ययन को ही मैं उत्तम मानता हूँ।' श्रीगोपालतापनी श्रुति भी कहती है-"भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैराश्येनामुस्मिन मनः कल्यपनमेतदेव नैष्कर्म्यम्।" अर्थात इस श्रीभगवान के भजन को ही भक्ति कहते हैं। इस लोक एवं परलोक की सभी प्रकार की कामना रहित होकर मन आदि समस्त इन्द्रियों को श्रीभगवान में विनियोग करना अर्थात् निरन्तर उनका स्मृतिमय परमावेश ही भजन है, एवं यह ही नैष्कर्म्य नाम से जाना जाता है। इस स्थल पर भजन और नैष्कर्म्य के सामानाधिकरण्य द्वारा यह तत्व ही प्रकाशित हो रहा है कि, भजन में प्रवृत होते ही भक्त के सर्वविध कर्मध्वंस हो जाते हैं एवं गुणवृत्तिशून्य मन श्रीभगवान के सेवा रसास्वादन में विभोर हो जाता है। इस स्थल पर नवलक्षणा पद का समुच्चय अर्थ आवश्यक नहीं है, अर्थात् प्रत्येक भक्त को ही इन नौ अंगो का अनुष्ठान करना होगा इस प्रकार नियम नहीं है। इस कारण भक्ति के एक अंग का अनुष्ठान करने पर भी साध्यवस्तु प्रेमलाभ कर कृतार्थ होने की बात सुनी जाती है। किसी अधिकारी के एक अंग को अन्य अंग के सहित मिश्रित होकर अनुष्ठित करने से आस्वादन की वैचित्री ही प्रकाशित होती है।

Scanned with CamScanner

"एक अंग साधे-केहो साधे बहु अंग।
निष्ठा हैले उपजये प्रेमेर तरंग॥
एक अंगे सिद्धि पाइल बहु भक्तगण।
अम्बरीषादि भक्तेर बहु-अंग-साधन॥"
(चै:च: मध्य-२२ परि:)

"श्रीविष्णो: श्रवणे" इत्यादि श्लोक में एक अंग साधन से निष्ठा का द्रष्टान्त दिया गया है। महाराज श्री अम्बरीय इत्यादि की वहु अंग में निष्ठा की बात भी वर्णित है। यथा-

"स वै मन: कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि बैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये
मुकुन्दलिंङ्गालय दर्शने दृशौ तदभृत्यगात्र स्पर्शोऽङ्गसंङ्गमम्
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते
पादौ हरे: क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तम:श्लोकजनाश्रया रति:॥"
(भा: ६/४/१८-२०)

"महाराज अम्बरीष ने श्रीकृष्ण पादपद्मों मैं अपने मन, श्रीकृष्ण गुणानुवर्णन में अपनी वागेन्द्रिय, श्रीहरि मंदिर मार्जनादि में करद्वय, अच्युत की पवित्र कथा के श्रवण में कर्णद्वय, श्रीमुकुन्द के विग्रह-मन्दिरादि के दर्शन में नेत्रद्वय, भगवद्भक्त

Scanned with CamScanner

के गात्रस्पर्श में अंगसंग, श्रीकृष्ण पादपद्म-सौरभयुक्त तुलसी की गन्ध में नासिका, श्रीकृष्ण को निवेदित-अन्नादि ग्रहण में रसना, भगवत क्षेत्र-गमन में पदद्वय, और श्रीकृष्ण के चरणवन्दन में अपने मस्तक को नियोजित किया था। श्रीकृष्ण को निवेदित-चन्दनादि वे श्रीकृंष्णप्रसाद रूप में ही ग्रहण करते थे, विषयभोग के अंगरूप में नहीं। इनकी कामना भी श्रीभगवद दास्य में ही नियोजित थी। भक्तजनाश्रया-रति जिससे लाभ हो, वे उन भजनांगो को उसी भाव से अनुष्ठान करते थे। इससे उनकी भगवद्भक्त के प्रति भक्ति भी व्यक्त हुई।" अतएव नवलक्षण शव्द से भक्ति सामान्य की उक्ति रहते हुए भक्तिमात्र का अनुष्ठान उचित था न्याय संगत हुआ है। यहाँ पर श्रीप्रह्लाद वाक्य से जो नौ अंगों की बात का उल्लेख हुआ है, भक्ति के अन्यान्य अंग समूह भी इन नवांग के अन्तर्गत ही राखे गये है, इनका कोई-कोई अंग नवांग के किसी किसी अंग के अन्तर्गत है, इसकी बाद में आलोचना करेंगे।

इसके बाद यथाक्रम से नवविधा भक्ति विवृत हो रही है। इसके बीच में श्रवणांग-भक्ति ही भजन की मौलिक और श्रेष्ठ है। एकमात्र श्रवणांग-भजन के द्वारा ही साधक को अनायास प्रेमसिद्धि लाभ हो जाती है। श्रीपादसूतमुनि ने शौनकादि ऋषिगण के निकट भागवत के प्रारम्भ में ही इस तथ्य को प्रकाशित किया है।

Scanned with CamScanner

"श्रृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम्॥
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवत सेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥
तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥
एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्ति योगतः।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥"

(भाः १/२/१७-२१)

"महत्गण के हितकारी जिसके पुण्यमय श्रवण कीर्तन हैं, वे श्रीकृष्ण अपनी कथा-श्रवण करने वाले के हृदय में कथारूप से प्रविष्ट होकर अंमगलमय विषय-वासना का नाश कर देते हैं। नित्य ही ग्रन्थ भागवत और भक्त-भागवत के सेवन के द्वारा विषय-वासना नष्टप्राय (अपराधादि प्रवल अंश रतिदशा तक रहने वाले) होने से नैष्ठिकी भक्ति का उदय होता है (इससे निष्ठा स्तर सूचित)। तब रजः तमोभाव से उत्पन्न काम-लोभादि के द्वारा चित्त विद्ध नहीं होता है। (इससे रुचि-स्तर की सूचना) विशुद्ध सत्त्व के आविर्भाव से चित्त प्रसन्न होता है। (आसक्ति और रतिस्तर सूचित) इस रूप से

Scanned with CamScanner

भगवद्भक्ति योग के द्वारा सम्यक चित्त-प्रसन्नता लाभ होने से मुक्तसंग साधक को तत्त्वविज्ञान लाभ होता है। (प्रेमस्तर सूचित) तब हृदयग्रन्थि (चित्‌जड़ की अहंकार-ग्रन्थि) छिन्न होती है, असम्भावनादि सर्वसंशय एवं प्रारब्धादि कर्म का नाश होता है और भगवत्-साक्षात्कार लाभ होता है।" उल्लिखित पाँच श्लोको में एकमात्र श्रवणांग-भजन के द्वारा ही चौदह स्तरों की सूचना की गई है। यथा (१) महत्‌कृपा (२) महत् सेवा (३) श्रद्धा (४) श्री गुरू पादाश्रय (५) भजन स्पृहा (६) भजन (७) अनर्थनाश (८) निष्ठा (९) रूचि (१०) आसक्ति (११) रति (१२) प्रेम (१३) दर्शन (१४) भगवन्माधुर्यानुभव (सारार्थ दर्शिना टीका- श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद)।

(१) "श्रवण" :— श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण और लीलामय शब्द समूह के कर्णेन्द्रिय को स्पर्श का नाम श्रवण है। इस स्थल पर ध्यान योग्य-विषय यह है कि श्रीभगवान् जिस प्रकार सच्चिदानन्द विग्रह, आनन्दमय और रसमय है— उनका नाम, रूप, गुण, लीला आदि भी उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप और रसस्वरूप हैं। आम लोगों के निकट प्राकृत शब्द के समान दीखते हुए भी कभी प्राकृत नहीं है।

".....।
कृष्णनाम-कृष्णस्वरूप दुइ त समान॥
नाम, विग्रह, स्वरूप-तिन एक रूप।

Scanned with CamScanner

तिने भेद नाहि तिन चिदानन्दरूप॥
देह-देहीर, नाम-नामीर कृष्णे नाहि भेद।
जीवेर धर्म्म-नाम-देह-स्वरूप विभेद॥
अतएव कृष्णेर नाम-देह-विलास।
प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य नहे हय स्वप्रकाश॥
कृष्ण नाम-गुण यत कृष्णलीलावृन्द।
कृष्णेर स्वरूप सम सब चिदानन्द॥
ब्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द-लीलारस।
ब्रह्मानन्दी आकर्षिया करे आत्म-वश॥
व्रह्मानन्द हैते पूर्णानन्द कृष्णगुण।
अतएव आकर्षये आत्मारामेर मन॥"

(चै:च:मध्य-१७ परि:)

(नामश्रवण) श्रवणांगभक्ति से इन पराक्षर समूह का कर्णेन्द्रिय से स्पर्शमात्र ही मानव के इन्द्रिय-मन में एक अप्राकृत तत्त्व के स्पन्दन की सृष्टि करता है एवं क्रमश: प्राकृतेन्द्रिय आदि का जड़त्व ध्वंस कर अग्नि तादात्म्य प्राप्त लौह के समान उसको चिन्मय कर देता है। श्री संकर्षण के प्रति श्री चित्रकेतु की उक्ति-

"न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षय:।
यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात्॥"

(भा: ६/१६/४४)

Scanned with CamScanner

"हे भगवन्! जिसका नाम एक बार मात्र सुनकर ही चण्डाल भी संसार से विमुक्त होता है, इसलिए उन्हीं आप के दर्शन से मानवगण के जो अखिल-पापक्षय होंगे इसमें कुछ भी आश्चर्य नही है।"

श्रीभगवान का नाम एक वार श्रवण करने से ही अधम चण्डाल को भी संसार मुक्ति का फल प्राप्त होता है, इसलिए उत्तम पुरुषगण को श्री भगवान का नाम सुनने से जो परमभक्तिफल ही लाभ होगा यही सूचित हुआ। फिर बहुनाम श्रवण से जो परम प्रेम रस का आस्वादन-लाभ होगा-इसमें क्या संदेह है?

रूपश्रवण :— यथा

ये तु त्वदीयचरणाम्बुज कोशगन्धं,
जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां,
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम्।।

(भा: ३/६/५)

व्रह्मा ने श्री गर्भोदशायी की स्तुतिप्रसंग में कहा—"हे प्रभो! जो वेदरूप वायुयोग से लाये गये तुम्हारे श्री चरण पंकज कोष की गन्ध कर्णविवर से सूँघते हैं, एवं परम भक्तिपूर्वक तुम्हारे श्रीचरण सर्वपुरुषार्थ सार बुद्धि से आश्रय करते हैं, हे नाथ! अपने उन स्वजनों के हृदयकमल को आप कभी परित्याग

Scanned with CamScanner

नहीं करते हो।" "ये त्वत्कथाश्रवणमत्यादरेण कुर्व्वन्ति तेषां हृदि नित्यं प्रकाशम् इत्यर्थः।" (टीका श्रीधर स्वामी)''जो अति आदर के साथ आपकी कथा का श्रवण करते हैं, उनके हृदय में आप नित्य ही प्रकाशित रहते हो।' अर्थात् कथा श्रवण द्वारा आपका रूप जैसे उनके हृदय में प्रवेश कर विराजता है। इसीलिए 'रूप श्रवण' कहा जाता है। श्रीमद जीव-गोस्वामिवाद ने कहा, 'चरण' शब्द अतिशय भक्तिपूर्वक ही निर्देशित किया गया है। वस्तुतः समग्र अंगमाधुरी ही समझना होगा। 'गन्ध' शब्द का अर्थ तुम्हारी श्रीमूर्ति का वर्ण, आकार आदि के माधुर्य नासारन्ध्र के द्वारा जिस प्रकार परम सुगन्धित वस्तु का सौरभ माधुरी-आस्वादन किया जाता है उसी प्रकार वे सब महाभागवतगण कर्णरन्ध्र के द्वारा तुम्हारे वर्ण और आकार आदि का आस्वादन करते रहते हैं। मूल श्लोक के "श्रुतिवातनीतं" शब्द का अर्थ वेद एवं वेदानुगत शव्दान्तर ही उस वायुद्वारा कर्णरन्ध्र में प्राप्त। अतएव वे परमा-भक्ति अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति के सहित तुम्हारे श्रीचरण हृदय में धारण करते हैं इसलिये आप उनका हृदय कमल छोड़ने में समर्थ नही होते हो। "नापैषीति ते यथा तव चरणाम्बुज एव लोभिनस्तत्रा त्यजन्ति तथा त्वमपि तेषां प्रेममाधुर्यवति हृदयाम्बुज एव लोभी तन्न-त्यजसीति परस्पर-वशीकार-सूचितः।" (श्रील विश्वनाथ सारार्थदर्शिनी व्याख्या) अर्थात

Scanned with CamScanner

'तुम भक्तगण का हृदय कमल कभी त्याग नहीं करते' इसका तात्पर्य यह है कि भक्तगण जिस प्रकार तुम्हारे चरणाम्बुज लोभी कभी उनको त्याग करने की इच्छा नहीं करते हैं, तुम भी उसी प्रकार भ्रमर के समान भक्तजन के प्रेम मकरन्द सम्पूर्ण हृदय मे लुब्ध होकर कभी उसे त्याग करने की इच्छा नहीं करते हो - इससे भक्त एवं भगवान की पारस्परिक वश्यता सूचित हुई।

गुण श्रवण :—

"कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम।
विज्ञान वैराग्य विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥
यस्तूत्तमश्लोक गुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः।
तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥"

(भाः १२/३/१४-१५)

श्रीपाद शुकदेवमुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा- "हे राजन! जो इसलोक में यशोविस्तार पूर्वक परलोक प्राप्त हुए हैं, उन सब राजन्यवर्ग के वाक्यविलास रूप कथासमूह विज्ञान-वैराग्य कहने की इच्छा से कहे गये थे, यह किन्तु परमार्थ नही है। उत्तमःश्लोक श्रीहरि के गुणानुवाद निरन्तर अमंगल-विनाशरूप से गाये जाते हैं, श्रीकृष्ण मे विमल भक्तिकामी व्यक्ति नित्य और वही श्रवण करें।" श्रीमदभागवत में जो सब राज-वंशीयगण का चरित्र वर्णन किया गया है श्री

Scanned with CamScanner

शुकदेव मुनि ने कहा है, यह सब मनुष्य के विषय के असारता ज्ञान एवं विषय वैराग्य-शिक्षा के निमित्त ही कहा गया है। अतएव यह सब वाक्यविलास-मात्र-रूप किन्तु पारमार्थिक नहीं है। महाराज परीक्षित जिज्ञासा कर रहे है तो मानवगण का उपादेय एवं परमार्थ क्या है। इसके उत्तर में कहा है-वही उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण का गुणानुकीर्तन, श्रीकृष्ण चरण में विमल-भक्तिकामी व्यक्ति को निखिल अमंगल विनाशन उनके गुणानुवाद नित्य और निरन्तर कीर्तन करना होगा। यहाँ पर प्रश्न उठता है - श्रीराम लक्षणादि का चरित्र भी क्या राजन्य-वर्ग में गिना जायेगा ? वह भी क्या मनुष्य को वैराग्यादि की शिक्षा के लिए कहा गया है एवं वाक्य विलास मात्र है ? इसके उत्तर में कहा है-वह भी भगवदगुणानुवाद कीर्तन एवं परमार्थ स्वरूप है। 'छत्रधारीगण जा रहे हैं' कहने से जिस प्रकार अधिकांश व्यक्तियों का ही छत्र है किसी किसी का नही भी है उनकी भी गणना कर ली गई है, उसी प्रकार राजन्य वर्ग में होते हुए भी श्रीरामलक्ष्मणादि के चरित्र श्रीभगवल्लीला एवं मानवगण के परमार्थरूप में श्रवण-कीर्तनीय है। तव जो श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ही "निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्" श्लोक मे समग्र श्रीमद्भागवत को ही वेदकल्पतरु का रसमय फल कहा गया है ? इसके समाधान में श्रीलगोस्वामिपाद ने कहा, श्रीमदभागवत के समस्त प्रसंग ही रसस्वरूप होकर भी किसी स्थल पर

Scanned with CamScanner

साक्षात् शान्त दास्यादि रसरूपत्व एवं किसी स्थल पर तदुपकरणभूत शान्तादि रसरूपत्व जानना होगा। वस्तुत: श्रीमद्भागवत के सब प्रसंगो का ही रसरूपत्व का सिद्धान्त ही समीचीन (उचित) है-हेयांश कही पर भी नही है। 'हरिगुण' कहने से यहाँ पर कारुण्यादि गुण ही समझना होगा। श्रीहरि का कारुण्य भक्तवात्सल्य, पतितपावन्त्वादि गुण श्रवण से श्रोतवृन्द के हदय उल्लसित होते है एवं श्रीकृष्ण में अनुराग उत्पन्न होता है। श्रीहरि के कारुण्य आदि गुण का ऐसा ही प्रभाव है। श्रीगीता में (२१/३६) देखा जाता है, "स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।" श्री अर्जुन ने श्रीकृष्ण के प्रति कहा है-'हे हृषीकेश! तुम्हारे गुण कीर्तन से जगत अत्यन्त आनन्द लाभ करता है और तुम में अनुरक्त होता है।' श्रीभगवान के समान महाभागवतगण के गुण-श्रवण-कीर्तन से विषय वैराग्य और श्री भगवान में अनुराग उत्पन्न होता है इसलिए श्री शौनक ऋषि ने श्रीसूतमुनि से कहा है -

"तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्ण कथाश्रयम्।
अथवास्य पदाम्भोज मकरन्द लिहां सताम्॥"

(भा: १/१६/५-६)

"हे महाभाग! यदि यह वृतान्त श्रीकृष्ण कथाश्रित अथवा उनके पादपद्म-मकरन्दास्वादन-लोलुप महत्गण की कथाश्रित है, तो उसका वर्णन करो।" यद्यपि आलोच्य श्लोक

Scanned with CamScanner

मे श्रीहरि के गुणानुवाद की कथा ही कही गयी है, तव भी रूप, लीला का सौष्ठव भी ग्रहण किया गया है समझना होगा अर्थात जिस प्रकार भगवत्गुण कीर्तन की महिमा उसी प्रकार नाम, रूप, लीला कीर्तन की भी समान महिमा समझना होगा। मूलश्लोक में "कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्सुमानः यहाँ 'अमला' शब्द के अर्थ मोक्ष इत्यादि वाञ्छारहिता एवं भक्ति शब्द के अर्थ 'प्रेमभक्ति' है। अर्थात् जिसे श्रीकृष्ण के चरण कमल में मोक्ष इत्यादि कामनाशून्य प्रेमभक्ति की इच्छा हो वे निरन्तर अमंगल नाशक श्रीहरि के गुणानुवाद श्रवण करेंगे। जिस प्रकार श्रीजड़भरत महाशय ने भी महाराज रहुगण के प्रति कहा है—

"यत्रोत्तमश्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे॥"
(भाः ५/१२/१३)

"जो सब महत्गण की सभा में ग्राम्यवार्ता नाशक भगवत्-गुणानुवाद प्रकृष्ट रूप से कीर्तित होता है, वह सब कथा सतत श्रवण करते करते मुक्तिकामीगण की भी मोक्षवाञ्छा दूरीभूत होकर भगवान श्रीवासुदेव में शुद्धमति का उदय होता है।" महत् प्रसंग में श्री हरिकथा-श्रवण मोक्षकामी व्यक्ति को भी भगवत् सेवानिष्ठमति प्रदान करती है, इसलिए भक्तिमात्रकामी पुरूष के सम्बन्ध में बात ही क्या है? 'मतिं

Scanned with CamScanner

सतीं' कहने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष वाञ्छा-रहिता मति। भक्ति-कामना-व्यतीत अन्य कामनायुक्ता मति व्यभिचारिणी, अथवा भ्रष्टा रमणी के समान जानना होगा। अन्वय या विधिमुखे श्रीहरि के गुण श्रवण की महिमा कीर्तन कर अब व्यतिरेक या निषेध मुख से वर्णन कर रहे हैं। यथा—

"निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान विरज्येत विना पशुघ्नात्॥"

(भा: १०/१/४)

महाराज परीक्षित ने श्रीशुकदेव मुनि से कहा-हे प्रभो। जिनकी विषयतृष्णा निवृत हो गयी है इस प्रकार के आत्माराम मुक्तपुरुषगण द्वारा उत्तमश्लोक श्रीहरि का-गुणानुवाद उपगीयमान, मुमुक्षगण भी भवरोग की औषध रूप में श्रीहरिकथा का निषेवन करते हैं, विषयीमानवगण को भी श्रीहरिकथा श्रवण और मन को सुन्दर व आनन्ददायक, इसलिए पशुघ्न या व्याध प्रकृति व्यक्ति को छोड़ इस हरिकथा के श्रवण से कौन विरत होगा? श्रीहरिकथा के श्रोता तीन प्रकार के है — मुक्त, मुमुक्ष और बिषयी। पूर्णकाम, आत्माराम, जीवन्मुक्त पुरुषगण को भी श्रीहरिकथा ब्रह्मानन्द की अपेक्षा भी अधिक आनन्दमय, सुरसाल एवं चित्ताकर्षक और उनके द्वारा उपगीयमान अर्थात् स्वत: स्फूर्तभाव से कही जाती है। मुमुक्ष या मुक्तिकामीगण भी श्रीहरिकथा को भवरोग निवृति के मुख्य उपाय के रूप में

Scanned with CamScanner

श्रवण-कीर्तन करते हैं। यहाँ तक कि- विषयीगण को भी श्रीहरिकथा वस्तु-प्रभाव से हृतकर्ण रसायन होती है। इन्हें छोड़कर चतुर्थ प्रकार के श्रोता जो कृष्णगत प्राण भक्तमहानुभाव है, उनके लिए तो श्रीहरि कथा प्राण स्वरूप है। अतएव पशुघ्न या व्याध प्रकृति के व्यक्ति को छोड़कर श्री हरिकथा से कौन विरत होगा? अर्थात् किसी को भी हरिकथा से विरत होना उचित नहीं है। श्रीलगोस्वामिपाद यहाँ पर एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं-

"राजपुत्र चिरं जीव मा जीव मुनिपुत्रक।
जीव वा मर वा साधो व्याध मा जीव मा मरः॥"

एक बार एक वन में शिकार के उद्देश्य से आये एक राजपुत्र ने एक मुनि के आश्रम में पहुँच कर उनके निकट आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। मुनि ने कहा हे राजपुत्र! तुम चिरकाल तक बचे रहो। अर्थात् जन्मान्तर के किसी सुकृति के फल से राजपुत्र होकर जन्मे हो, इस समय हिंसा आदि पाप कार्य कर रहे हो मरने पर नरक आदि दुःख भोग करना पड़ेगा इसलिए तुम्हारा बचे रहने में ही मंगल है। इसी अवसर पर एक मुनिपुत्र के आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करने पर मुनि ने कहा- हे मुनिपुत्र! तुम मर जाओ। तुम्हारा मर जाना ही अच्छा है। कारण जब तक जिन्दा रहोगे, तव तक तपस्या आदि क्लेश भोग करना होगा, मर जाने से तपस्या-लब्ध सम्पत्ति-भोग कर

Scanned with CamScanner

सुखी हो सकते हो। इसके बाद एक भजनानन्दी भक्त-महात्मा ने भी आकर मुनि के निकट आशीर्वाद-प्रार्थना की तो मुनि ने कहा—हे साधो! तुम जिन्दा रहो या मर जाओ- दोनों में ही तुम्हारा मंगल है। जिन्दा रहने से भक्त-संग हरिनाम, हरिकथा का आस्वादन, मरने से श्रीहरि की साक्षात सेवा प्राप्ति। इस अवसर पर शिकार के लिए आए हुए एक व्याध ने मुनि के निकट आकर वर की प्रार्थना करने पर मुनि ने कहा, हे व्याध! तुम बचोगे भी नहीं और मरोगे भी नहीं। वचे रहने से हिंसादि पूर्ण दु:खमय जीवन यापन एवं मरने पर नरकादि दु:ख भोग। अतएव राजपुत्र के लिए यहाँ है- वहाँ नहीं, मुनि पुत्र के लिए वहाँ है यहाँ नहीं, साधुभक्त यहाँ भी है, वहाँ भी है, व्याध के लिए यहाँ भी नहीं, वहाँ भी नही। अतएव व्याध के जीवन में विषयसुख अनुभव की भी सामर्थ्य नहीं है। विशेषत: हिंसा विद्ध-हृदय होने के कारण श्री हरिकथा आस्वादन का अभाव-इस कारण श्रीहरिकथा अति रहस्यमय है। अथवा 'पशुघ्न' शब्द का एक अर्थ श्री हरिकथा-विमुख-व्यक्ति दैत्यस्वभाव-प्राप्त अथवा निन्दुक स्वभाव। 'निन्दुक' होने का अर्थ दूसरे के हृदय को पीड़ा प्रदान करना। कारण निन्दा से हृदय में जिस प्रकार की वेदना उत्पन्न होती है— शस्त्रादि के आघात से वह नही होती है। हिंसक का धर्म रहने से उसको पशुघ्न कहा गया है। व्याध जिस प्रकार मृगादि

Scanned with CamScanner

के सौन्दर्यादि गुण को कोई महत्व न देकर जिस प्रकार हिंसा मात्र में ही तत्पर, उसी प्रकार हरिकथा के रस ग्रहण के अभाव में कथा-विमुख व्यक्ति को जो पशुघ्न (व्याध) कहा गया है यह युक्तिसंगत ही है। दोनों ही प्रकार के अर्थ में श्रीहरिकथा-विमुखजन को गाली प्रदान करना ही तात्पर्य है। श्री मैत्रेय मुनि ने विदुर के प्रति कहा है—

"को नाम लोके पुरूषार्थ सारवित् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम्॥"
(भा: ३/१३/५०)

"हे विदुर! पहले तुम्हारे निकट जो सब चरित्र का वर्णन किया, उस पुरावृत्ति के मध्य में संसार नाशिनी भगवत कथा सुधा कर्णाञ्जलि द्वारा पान कर नरेतर पशुभिन्न पुरुषार्थ सारवेत्ता कौन जन विरत होता है? इससे श्रीमैत्रेय मुनि भी श्रीहरि कथा विमुख-जन को पशु कहकर गाली प्रदान किये हैं।"

लीला श्रवण :— श्रीपाद शुकदेव मुनि ने महाराज परीक्षित के प्रति कहा है—

"ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्र
मात्मप्रसाद उतयत्र गुणेष्वसंग:।
कैवल्य सम्मतपथस्त्वथ भक्तियोग:
को निर्वृतो हरिकथा सुरति न कुर्यात्॥"

Scanned with CamScanner

"हे राजन्! भागवतगण के संग से जो श्रीहरिकथा का श्रवण होता है, उससे इस प्रकार ज्ञान का उदय होता है जिससे गुणोर्मीचक्र या विषय राग आदि प्रतिनिवृत्त हो जाते हैं, आत्मप्रसाद या मनः प्रसन्नता लाभ होती है और विषयों से वैराग्य उत्पन्न होता है। कैवल्यसम्मत पथ यह भक्ति योग लाभ किया जाता है। उस हरिकथा से श्रवण-सुखलाभ कर कौन व्यक्ति उससे रति नही करेगा?" अनन्तर लीला श्रवण का माहात्म्य कीर्तन कर रहे हैं - भक्तसंग से जिस श्री हरिकथा में रति का उदय होता है, उस श्री हरिकथा श्रवण की महिमा इस प्रकार है कि उससे ज्ञान का उदय होता है वह ज्ञान 'अप्रति-निवृत्त गुणोर्म्मिचक्रम' अर्थात् जिस ज्ञान से रागादि-गुण तरंग समूह की सम्यक रूप से निवृत्ति हो जाती है। उस हरिकथा से आत्मप्रसाद लाभ होता है जिससे जड़ीय विषय में अनासक्ति आ जाती है। अधिक क्या कहें, श्रीगीता में 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा' इत्यादि (१८/५४) श्लोक में कैवल्य को जो प्रेमभक्ति प्राप्ति का द्वार कहा गया है, अर्थात् आत्माराम आप्तकाम अवस्था प्राप्त न हुए जो ज्ञानी साधकगण को श्रीभगवान में प्रेमभक्ति उत्पन्न नही होती है, भक्त को किन्तु श्रीहरिकथा श्रवण के फल से वह कैवल्य अननुसन्धान से ही लाभ हो जाता है। अनन्तर श्री हरिचरण में प्रेमभक्ति का उदय होता है-इस प्रकार श्री भगवान की लीला कथा- श्रवण सुख से सुखी होकर अन्यत्र

Scanned with CamScanner

विरत होकर—एकमात्र श्री हरिकथा से ही कौन जन रति या राग न कर रह सकता है? अधिक और क्या, इस लीला श्रवण के निमित्त ही सर्ववेदान्तसार महापुराण श्रीमद्भागवत का आविर्भाव है। श्रीमद्भागवत में (१/५/८ श्लोक में) श्रीनारद ने महामुनि वेदव्यास के निकट कहा है—

"भवतानुदित प्रायं यशो भगवतोऽमलम्
येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम्॥"

"हे व्यास! आपने श्रीभगवान का विमल-यश प्रधान रूप से वर्णन नहीं किया इसलिए चित्त की प्रसन्नता- लाभ नही कर पा रहे हैं। तथापि निज विद्या बुद्धि के वल से श्री भगवान की लीला वर्णन नहीं कर पायेंगे-जिस क्षण तक स्वप्रकाश वह लीला कृपा कर आपके चित्त में स्वयं उदित न हो। इसलिए "समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्" लीला की कृपालाभ के निमित्त आप समाधिस्थ होकर श्रीभगवान की विचित्र लीला स्मरण कीजिए।"

वह लीला दो प्रकार की है (१) सृष्टयादि रूपा (२) लीलावतार-विनोदरूपा। यह लीला ही अति प्रशस्ता है। श्री व्रह्मा ने श्री नारद के प्रति (भा: २/६/४५ श्लोक में) कहा है-

"प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान् पुरुषस्य भूम्नः।
आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान् सुपेशान॥"

"हे नारद! उस परब्रह्म श्रीभगवान के प्रधान प्रधान जो

Scanned with CamScanner

सब अवतार है, उनके चरित्र श्रवण करने से कर्णमल (वार्तान्तर- श्रवण वासना) दूरीभत होती है, क्रम से वह सकल सुन्दर-अवतार-कथा भी तुम्हारे निकट कहूँगा, वही कथामृत तुम पान करो।" अर्थात् हे नारद! यद्यपि मैं "आद्यो अवतारः पुरूषः परस्य" इत्यादि ग्रन्थ में पुरुष एवं कालादि श्री भगवान की शक्ति, मन इत्यादि उस शक्ति के कार्य, ब्रह्मादि श्री भगवान के गुणावतार, दक्ष इत्यादि श्रीभगवान की विभूति आदि की बात कही है अर्थात् श्रीभगवान की सृष्टि आदि लीला का संवाद पहले ही वर्णन किया है, तथापि हे ऋषिवर! उस परम पुरूष के जो सब लीलावतारगण के चरित्र प्रधान रूप से वेद और वेदानुगत-शास्त्रगण कीर्तन करते रहते हैं, वे सव लीलावतार जो मेरे हृदय में आविर्भूत हैं, वे कर्ण कषाय शोधनकारी अर्थात जिन सब लीलावतार के कथा श्रवण करने से अन्य कथा या विषय वार्ता सुनने की लालसा विदूरित हो जाती है जो लीलावतार चरित्र परम मनोहर, वही अनुक्रम से वर्णन करता हूँ तुम उसे सम्यक रूप से पान करो।

वेदस्तुति से भी लीलाश्रवण की प्रशंसा देखी जाती है—

"दुखगमात्मतत्त्व निगमाय तवात्ततनोश्चरित-
महामृताब्धि परिवर्तपरिश्रमणाः।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर-
ते चरणसरोज हंसकुल सङ्गविसृष्ट गृहाः॥"

(भाः १०/८७/२१)

Scanned with CamScanner

वेदगण ने श्री भगवान् की स्तुति प्रसंग में कहा–"हे प्रभो! तुम्हारा स्वरूप तत्त्व अतिशय दुर्बोध साधन शक्ति के द्वारा कोई भी समझने में समर्थ नही है। तुम स्वयं अपना तत्त्व अनुभव करवाने के निमित्त इस विश्व में अपनी श्रीमूर्ति प्रकाश कर जो सब मधुरलीला को प्रकाशित करते रहते हो, वह लीला ही महासुधा रस की सिन्धु है। जो महदसंग और महतकृपा लाभ से धन्य हो रहे हैं वे इस लीला रससिन्धु में अवगाहन कर आत्मतत्व ज्ञान –लाभ के श्रम से निर्मुक्त हो रहे हैं। अर्थात् तुम्हारे लीला रस आस्वादन के द्वारा ही तुम्हारे स्वरूपतत्त्व की अनायास ही उपलब्धि हो जाती है। वे इस प्रकार एक अपूर्व रसास्वादन–लाभ करते हैं कि मोक्षसुख को भी अतिशय तुच्छ बोध करते हैं। इसलिए इन्द्र आदि पद प्राप्ति की जो आकांक्षा नहीं करते हैं यह कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार के भाग्यवान भक्तों की संख्या अति अल्प है। वे लीलारस सुधास्वादन से पूर्ण होकर गृहादि सुख की अपेक्षा नहीं करते हैं, इस कारण तुम्हारे श्रीचरणकमलों को हंस के समान सतत रतियुक्त भक्तकुल के संग वे गृहादि सुखापेक्षा परित्याग करते हैं।" इस प्रकार उक्ति से श्रवण– कीर्तन रूपा भक्ति का आधिक्य श्रुति में भी पाया जाता है यथा–"यं सर्व्वे देवानमन्ति–मुमुक्षवो व्रह्मवादिनश्चेति" इस श्रुति की व्याख्या में सर्वज्ञ भाष्य कार श्रील शंकराचार्य

Scanned with CamScanner

पाद ने लिखा है—"मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भगवत्तं भजन्त इति।" मुक्तपुरुषगण भी स्वेच्छा से भजनोपयोगी देहधारण कर श्री भगवान का भजन करते हैं। इस श्लोक की व्याख्या के अन्त में श्रीधरस्वामी ने लिखा है—

" त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्व्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वगं तृणोपमम्॥"

"श्रीकृष्ण के कथामृतसिन्धु में महानन्द से विहारपरायण सुकृतिमान् व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थ को तृण के समान अति तुच्छ मानते हैं।" श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण और लीला के श्रवण-प्रसंग का वर्णन किया गया। इस भाव से ही श्रीभगवान के परिकरगण के गुणादि का श्रवण भी जानना चाहिए। श्रीभगवान आनन्दमय, रसमय हैं तभी तो लीलामय हैं। रस न होने से लीला नहीं होती है, रस ही लीला का प्राण है। लीला का अर्थ है खेल। लीला या खेल अकेले नही खेल के लिए साथी चाहिए। श्री भगवान किसके साथ खेलेगें ? उनके खेल के साथी उनके परिकरगणादि है। इसलिए श्रीभगवान के गुण आदि के श्रवण-कीर्तनादि के साथ परिकरगण के गुणादि के श्रवण-कीर्तनादि भी स्वतः ही सुसिद्ध हो जाते हैं। महदगण के गुणानुवाद-श्रवणादि की महिमा श्रीमद्भागवत में देखी जाती है—

Scanned with CamScanner

"श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सुरभिरीडितोऽर्थः।
यत्तद्गुणानु श्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम्॥"
(भाः ३/१३/४)

श्रीविदुर ने मैत्रेय ऋषि के प्रति कहा-"हे मुने! जिसके हृदय में भगवान मुकुन्द के पदारविन्द विराजमान हैं, उन भक्त जनों के गुणों को श्रवण करना ही मनुष्यों के बहुत दिनों तक किये हुए शास्त्राभ्यास के श्रम का मुख्य फल है, ऐसा विद्वानों का श्रेष्ठ मत है।" नामश्रवण, रूप श्रवण, गुण श्रवण और लीला श्रवण इस प्रकार का क्रम किया गया है। यद्यपि इन सब मे से किसी एक के श्रवण से भी एवं क्रम-परिवर्तन कर श्रवण करने से भी सिद्धि या प्रेमलाभ होगा फिर भी इस प्रकार क्रम निरूपण करने का कारण यह है कि प्रथमतः अन्तःकरण-शुद्धि के निमित्त नाम श्रवण की अपेक्षा, शुद्ध अन्तःकरण से रूप की उदय योग्यता लाभ होती है, रूप के उदय से चित्त में गुण का स्फुरण होता है। इस प्रकार से नाम रूप, गुण और परिकरगण के स्फुरण से लीला का सुचारु स्फुरण सम्भव पर है। यह रूप कीर्तन और स्मरणांग सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

यह श्रवणांगभक्ति महत् के श्रीमुखोच्चारित होने से वह महामाहात्म्य-सम्पन्न होती है एवं जातरुचि साधकगण की परम सुखद हो जाती है। यह फिर दो प्रकार की है-

Scanned with CamScanner

(१) महत्कर्त्तक आविर्भावित एवं (२) महत्गण कर्त्तक कीर्त्यमान्। महदाविर्भावित सम्वन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

"इदं भागवतं नाम पुराणं व्रह्मसम्मितम्।
उत्तम:श्लोकचरितं चकार भगवानृषि:॥"
(भा: १/३/४०)

'भगवान् व्यासदेव ने उत्तम:श्लोक श्रीहरि का चरितात्मक सर्ववेदतुल्य इस श्रीमद्भागवत महापुराण का प्रणयन किया है।' यहाँ पर श्रीमद्भागवत की महिमा की सूचना के लिए ही श्री व्यासदेव द्वारा रचित कहकर वर्णन हुआ है।

"निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुका:॥"
(भा: १/१/३)

"श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पतरु का फल है, श्री शुकदेव मुनि के श्रीमुख से शिष्यानुशिष्य रूप-पल्लव-परम्पराक्रम से धीरे धीरे अखण्ड रूप से इस विश्व में अवतीर्ण हुआ है। यह अमृतद्रवसंयुत-रसमय फल इसलिए अष्टिवल्कलादि हेयांश रहित है। हे रसिक भावुक भक्तगण! आप मोक्षकालावधि यह श्रीमद्भागवत फल पुन: पुन: आस्वादन करिए।" महत्गण द्वारा कीर्त्यमान् यथा—

Scanned with CamScanner

"स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः॥"

श्री भगवान की पृथु महाराज को वर प्रदान करने की इच्छा होने पर वे बोले —"पुण्यकीर्ति प्रभो! आपके चरणकमल-मकरन्द रूपी अमृतकणों को लेकर महापुरुषों के मुख से जो वायु निकलती है, उसी में इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व को भूले हुए हम कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव हमे दूसरे वरों की कोई आवश्यकता नही है।" इस प्रकार से महत्गण द्वारा कीर्तनीय श्री हरिकथा का महामाहात्म्य एवं महासुखप्रदत्त कहा गया। महाराज प्राचीनवर्हि के प्रति श्रीनारद की उक्ति से भी यही जाना जाता है—

"तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र,
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति।
ता ये पिवन्त्यवितृषो नृप गाढ़कर्णै,
स्तान्न स्पृशन्त्यशनतृडभयशोकमोहाः॥"

(भाः ४/२६/४०)

"हे राजन! साधुसंग में महाजन द्वारा श्रीमधुसूदन की चरितामृतसार रूप अमृत की नदियाँ चारों ओर प्रवाहित होती हैं। जो पिपासित-चित्त से सावहित हो उसे पान करते हैं उन्हें क्षुधा, पिपासा, भय, शोक और मोह स्पर्श नहीं कर पाते हैं।"

सत्संग को छोड़कर स्वयं श्री हरिकथा के चिन्तन

Scanned with CamScanner

आदि में आलस्यादि और रसावेश के अभाववश भूख प्यास आदि से अभिभूत मानव को भक्ति विकाश प्राप्त नहीं होता है इसलिए श्री नारद ने परवर्ती श्लोक मे कहा-

"एतैरूपद्रतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः।
न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम्॥"

(भा :४/२६/४१)

अर्थात् "इस क्षुधा तृष्णा आदि से पीड़ित हुए मानवगण स्वयं श्रीहरिकथामृत-निधि-विषय मे रति में समर्थ नही हो पाते हैं, महाजनगण- द्वारा वर्णित भगवत यशः समूह अपने माहात्म्यवल से मानव के इन सब देहधर्म को दूरीभूत कर उसको निजसुख या आस्वादन-अनुभव करा देता है।"

"तत्रापि श्रवणे श्रीभागवत श्रवणन्तु परमश्रेष्ठं तस्य तादृश- प्रभावमय-शव्दात्मकत्वात परमरसमयत्वाच्च" (भः सः २६० अनुः) तथापि श्रवण करने योग्य मे श्रीमद्भागवत की कथा का श्रवण ही परम श्रेष्ठ है, इसके दो कारण हैं (१) श्रीमद्भागवत की उस प्रकार की महाप्रभावमय शव्द शक्ति, (२) श्रीमद्भागवत- कथा परम रसमय। श्रीमद्भागवत की प्रभावमय शब्द शक्ति के विषय में श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ (१/२/२ श्लोक में) में ही वर्णित है-

"श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवा परैरीश्वरः।
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥"

(भाः १/१/२)

Scanned with CamScanner

अर्थात जिनके श्रीपादपंकज की सभी महापुरुषगण आराधना करते रहते हैं, उन महामुनि भगवान् श्रीमन् नारायण- द्वारा ही श्रीमद्भागवत आविर्भूत हुआ है। इसलिए इसकी शब्दशक्ति ऐसी अद्भुत प्रभावमय है कि साक्षात् भागवत श्रवण की बात तो दूर रही, श्रीमद्भागवत-श्रवण की इच्छामात्र से ही भगवान् श्रीहरि उन सब सुकृतिमान जन के हृदय में तत्क्षणात् अवरुद्ध हो जाते हैं। अन्य शास्त्र-श्रवण से क्या श्रीहरि हृदय में अवरुद्ध होते हैं? कभी नहीं होते यदि होते हैं तो विलम्ब से ही सम्भव है। इससे श्रीमद्भागवत की स्वाभाविक शव्द-शक्ति प्रदर्शित हुई। प्रेम को छोड़ श्री भगवान् कभी भी किसी के हृदय में अवरुद्ध नही होते हैं। श्रीमद्भागवत-श्रवण की इच्छा मात्र से ही हृदय में प्रेम का आविर्भाव होता है, वही इस श्लोक से जाना जाता है। इस प्रकार प्रेम के बीच में भगवत्प्राप्ति का सन्धान अन्य कोई शास्त्र नही दे पाता है। तभी तो अपनी महिमा में श्रीमद्भागवत अतुलनीय है। इसको छोड़कर भी नाना दिशाओं से श्रीमद्भागवत का वैशिष्टय जाना जाता है। स्वयं महामुनि वेदव्यास ने श्रीगरुड़ पुराण में श्रीमद्भागवत के उस वैशिष्टय के विषय में लिखा है—

"अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥
पुराणानां सामरूपः साक्षात्भगवतोदितः॥"

Scanned with CamScanner

श्रीमदभागवत ब्रह्मसूत्र का प्रकृत अर्थशास्त्र है। ब्रह्मसूत्र अतिशय दुरधिगम्य है। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" "जन्मदचस्य यत:" "शास्त्रयोनित्वात्" "तत्तु समन्वयात्" आदि सूत्रसमूह का प्रकृत तात्पर्य क्या है; कौन उद्देश्य लेकर महर्षि वेदव्यास ने यह समस्त सूत्र प्रणयन किये है – इसे लेकर सर्वज्ञ महानुभव आचार्यगणों में परस्पर मतवैषम्य देखा जाता है। श्री पाद आचार्य शंकर ने इन सब सूत्रों का जो अर्थ ग्रहण किया है, आचार्य श्रील रामानुज ठीक उसके विपरीत अर्थ ग्रहण किये है। श्रीपाद मध्वाचार्य, श्रीनिम्बार्क आदि सम्प्रदायाचार्यगण के मध्य भी इन समस्त सूत्रों के तात्पर्य को लेकर गुरुतर मत वैषम्य देखा जाता है। इस प्रकार की अवस्था में साधारण मायामुग्ध मानव नि:संशय चित्त से कौन सा अर्थ ग्रहण कर प्रकृत सत्य के पथ पर चले? कारण यह है, कि विरोधी पक्ष में सभी स्व-स्व प्रधान हैं। महामुनि वेदव्यास ने कहा- श्रीमद्भागवत का अवलम्बन करो। इसका कारण यह है कि ब्रह्मसूत्र के अर्थ या यथार्थ तात्पर्य के अवलम्बन से मैने श्रीमद्भागवत को ही प्रकाशित किया है। महाभारत रचना करके भी श्री व्यासदेव के चित्त में असंतोष था, श्रीनारद के उपदेश से उन्होंने इस श्रीमद्भागवत का प्रणयन कर चित्त में संतोष लाभ किया। यहाँ तक कि जिस गायत्री को सर्ववेदसार कहा जाता है, परब्रह्म सम्वन्ध से जिसको मूल मन्त्र कहा जाता

Scanned with CamScanner

है श्रीमद्भागवत उस गायत्री का भी भाष्य स्वरूप है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है, –गायत्री मन्त्र में "उपास्यं परमं ब्रह्म यत्रात्मा प्रतिष्ठित:" यह बात अत्यन्त सत्य है। उस परंब्रह्म परमात्मा की परावस्था स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवत के उपास्यतत्व हैं। गायत्री मन्त्र के "धियो योन: प्रचोदयात्" यह अंश श्रीकृष्ण स्वयं श्रीगीता के उपसंहार मे श्रीअर्जुन को लक्ष्य कर विश्वजीव की बुद्धिवृत्ति को उसके परम स्वरूप की ओर प्रेरित कर रहे हैं,–"सर्व्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज" "मन्मना भव मदभक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु" वाक्यों के द्वारा। यहाँ पर ही श्रीगीता की समाप्ति है। किस प्रकार सर्वधर्म त्याग कर श्रीकृष्ण के चरणों में प्रपन्न होकर उनका भजन करना चाहिए, श्रीमदभागवत में प्रत्येक भक्त के चरित्र में यह उत्तम रूप से परिस्फुट हो रहा है। इसकी परिसमाप्ति हुई है प्रेममयी ब्रजवाला गण के महामहीयसी चरित्र से। लोकधर्म वेदधर्म त्याग कर देह, गेहादि विस्मृत हो किस भाव से उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में आत्मनिवेदन किया है–भगवान् वेदव्यास ने श्रीमद्भागवत मे रासादि लीला में उसे परिस्फुट किया है। इसलिए गायत्री मन्त्र का भाष्य स्वरूप श्रीमद्भागवत ही है, वह उत्तमरूप से जाना जाता है। फिर श्रीमद्भागवत "वेदार्थपरिवृंहित:" श्रीमद्भागवत में वेदमन्त्र समूह को नूतन रूप में सजाया गया है – प्रत्येक आख्यान में, प्रत्येक

Scanned with CamScanner

स्तर पर, एवं प्रत्येक श्लोक में। आचार्य प्रवर श्रील नीलकंठ सूरी ने वेदमंत्र उद्धृत कर श्रीमदभागवत की समस्त लीलाओं की अपने मन्त्र भागवत ग्रन्थ में व्याख्या की है। इसलिए श्रीमद्भागवत सर्ववेदान्त सार है। तभी श्री वेदव्यास ने कहा है–"पुराणानां सामरूपः साक्षात् भगवतोदितः" सत्य ही श्रीमद्भागवत पुराणराज–चक्रवर्ती है। तभी तो श्रीधरस्वामि पाद ने लिखा है –"ववर्वर्त्ति सर्वोपरि" गुण गौरव में श्रीमद्भागवत सर्वोपरि विराजमान है। अनायास ही माया के बन्धन को तोड़कर नित्यानन्दरसमय श्रीगोविन्द के पादपद्म प्रेम सेवा लाभ से यदि किसी को धन्य होने की आकांक्षा हो, तो उसको श्रीमद्भागवत की रसमयी श्रीकृष्ण कथा के संग परिचित होना ही होगा।

द्वितीयतः श्रीमद्भागवत कथा परम रसमय है। श्रीमद्भागवत वेदकल्पतरु का रसमय फल एवं शुकमुनि के श्रीमुखनिर्गलित होने से (शुकपक्षी का उच्छिष्ट फल अधिक मीठा होता है ऐसी प्रसिद्धि है) श्रीमद्भागवत प्रति पद पद में आस्वादनीय है। श्रीमद्भागवत के उपसंहार में श्रीसूतमुनि ने श्रीशौनकादि ऋषिगण के प्रति कहा है–

" सर्व्ववेदान्त सारं हि श्रीभागवतमिष्यते।
तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्र स्याद् रतिः क्वचित्॥"
(भाः १२/१३/१५)

Scanned with CamScanner

"श्रीमद्भागवत सर्व वेदान्तसार है। जो श्रीमद्भागवत रस सुधा से परितृप्त हैं, उनकी अन्यत्र कहीं भी रति नहीं है।" इस उक्ति द्वारा श्रीमद्भागवत-रसास्वादन की चमत्कारिता दिखाई गई हैं। श्रीमद्भागवत की प्रभावमय शब्दशक्ति एवं रसमयत्व के निमित्त श्रीमद्भागवत-श्रवण का श्रेष्ठत्व प्रदर्शित हुआ।

इस स्थल पर विचारणीय विषय यह है, प्रथमतः श्री भगवान का नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर आदि श्रवण ही परम श्रेयः है। इस श्रवण के मध्य में महत् द्वारा आविर्भावित प्रवन्ध आदि और भी अधिक श्रेयः जनक है, कारण यह है कि उससे महतगण की भजनानुभूति मिलकर श्रवणकारी के लिए अधिक उल्लासप्रद हो जाता है। फिर वह महदाविर्भावित प्रवन्धादि यदि महत् द्वारा कीर्त्यमान हो- तो उसका महत्व और भी अधिक है। उस प्रवन्धादि के मध्य भी फिर श्रीमद्भागवत की महिमा ही सर्वाधिक है, इसके दो कारण इसके पहले ही प्रदर्शित हुए है। वही श्रीमद्भागवत यदि फिर महत् द्वारा कीर्त्यमान, तो वह श्रवणकारी को सर्वापेक्षा अधिक मंगलप्रद हो जाता है। इस स्थल पर श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण, लीलादि के श्रवण-सम्पर्क के सम्वन्ध में श्रीमद जीवगोस्वामिपाद एक ध्यान योग्य विषय का उल्लेख कर रहे हैं। श्री भगवान के असंख्य अवतार हैं, साधक किस अवतारमूर्ति के नाम-गुणादि का श्रवण करेंगे? वे अर्चनांग

Scanned with CamScanner

भक्ति विषयक एक श्लोक का द्रष्टान्त दे रहे हैं—

"लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन संदर्शितागमः।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्या भिमतयाऽऽत्मनः॥"

(भाः ११/३/४८)

श्रीगुरुपादपद्म से दीक्षारूप कृपा लाभकर, वे श्रीभगवान की जिस प्रकार अर्चना करने की प्रणाली की शिक्षा दें, उसी प्रकार अर्चना करना कर्त्तव्य है।" जिस श्रीभगवन्मूर्ति की अर्चना करना है वह अपनी प्राणाभीष्ट-मूर्त्ति होना ही वाञ्छनीय है, कारण उससे सहज ही प्राणों का आकर्षण उत्पन्न होता है। इस स्थल पर श्रीभगवन्नामादि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार समझना होगा। अर्थात अपने प्राणाभीष्ट देव के नाम, रूप, गुण, लीलादि की पुनः पुनः आवृत्ति करने की आवश्यकता है। फिर वह नाम, गुणादि यदि स्वजातीयाशय वासना विशिष्ट, स्निग्ध और निजापेक्षा श्रेष्ठ सुरसिक महत के श्रीमुख से श्रवण का सौभाग्य--लाभ हो, तो समधिक आस्वाद्य हो जाता है। इसलिए ही श्रीमद रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है—

" स्वजातीयाशये स्निग्धे साधौ संगः स्वतो वरे।
श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादो रसिकैः सह॥"

(भः रः सि)

फिर सब प्रकार साधकगण के पक्ष मे श्रीकृष्ण के

Scanned with CamScanner

नाम, रूप, गुणादि के श्रवण सबसे श्रेष्ठतम है, कारण श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् और पूर्णतम परतत्त्व है। उसमे सब भगवत स्वरूप के नाम गुणादि का श्रवण हो जाता है। विशेषत: अखण्ड माधुर्यमूर्ति ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण मे जो असाधारण चार गुणों का सन्निवेश है, वह अन्य किसी भगवतस्वरूप में नहीं देखा जाता हैं।

"सर्व्वाद्भुतचमत्कार लीलाकल्लोल वारिधि:।
अतुल्य मधुर प्रेममण्डित प्रिय मंडल:॥
त्रिजगन्मानसाकर्षि-मुरलीकल कूजित:।
असमानोर्द्ध रूप श्री-र्विस्मापित-चराचर:॥"
(भ: र: सि:)

"श्रीब्रजेन्द्र नन्दन सर्वाद्भुत-चमत्कार-लीला रस के कल्लोलित सिन्धु है, वे अतुलनीय मधुरप्रेम रस मंडित-पार्षदगण के सहित लीलायित, उनकी मुरली का कल कूजन त्रिजगत के मन को आकर्षित करके रखता है, उसकी असमानोर्द्ध रूप श्री चराचर अर्थात, स्थावर जंगम की विस्मापक है।" उनके नाम, रूप गुण लीला में इस सब की ही अभिव्यक्ति घटती है। कीर्त्तनादि सम्बन्ध में भी उक्त सिद्धान्त का ही अनुसरण करना होगा। स्वयं जिस श्रीभगवद् धाम, गुण, लीलादि का कीर्तन करेंगे वह पूर्व में श्रीशुकदेवादि महाजनगण द्वारा कीर्तित हुआ है इस प्रकार अनुसन्धान पूर्वक कीर्तन करेंगे।

Scanned with CamScanner

श्रवणांग भक्ति प्रदर्शित हुई। इस श्रवण को छोड़कर कीर्तनादि भजनांग से ज्ञानलाभ नहीं हैं, इस कारण श्रवणांग भक्ति का ही पहले उल्लेख किया गया है। अर्थात् जिस भजनांग के विषय में साधु, गुरु के श्रीमुख से श्रवण नहीं हुआ उस विषय में सम्यक ज्ञानलाभ सम्भवपर नहीं। विशेषत: यदि साक्षात् महत्जन द्वारा कीर्तन का श्रवणभाग्य न हो तभी स्वयं पृथक कीर्तन करना होगा—इस नियम के लिए भी श्रवणांग भक्ति का प्राधान्य जानना होगा। श्रीमद्भागवत में (१/५/११) "तद्वागविसर्गो जनताघविप्लव:" इत्यादि श्लोक की टीका में श्रीधरस्वामिपाद ने लिखा है—"यत् यानि नामानि वक्तरि सति श्रवणन्ति, श्रोतरि सति गृणन्ति, अन्यदा तु स्वयमेव गायन्तीति" अर्थात् श्रीभगवन्नाम-गुणादि के सदवक्ता उपस्थित होने पर स्वयं श्रोता होकर श्रवण करना चाहिए। यदि उस प्रकार के सदवक्ता का अभाव हो एवं श्रोता उपस्थित हों तो स्वयं वक्ता होकर भगवन्नामादि कीर्तन करना चाहिए। और यदि वक्ता और श्रोता दोनों का ही अभाव हो तो अपने आप कीर्तन करना चाहिए। अर्थात् सदवक्ता के श्रीमुख से श्रीमद्भागवतादि श्रवण का जिस प्रकार रसास्वादन लाभ होता है, स्वयं कीर्तन से वह कभी सम्भव नहीं। और वक्ता के अभाव में श्रोता के निकट कीर्तन करने से भी एकाकी कीर्तन अपेक्षा अधिक लाभ होता है। इसलिए वक्ता और श्रोता के

Scanned with CamScanner

अभाव में एकाकी स्वयं कीर्तन का विधान प्रदान किया गया।

(२) "**कीर्तन**"-कीर्तनांग भक्ति का भी पूर्ववत् (श्रवणांग के समान) नाम, रूप, गुण लीला का कीर्तन इस प्रकार जानना चाहिए। श्रीनाम कीर्तन-माहात्म्य यथा-

"सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥"

(भा: ६/२/१०)

"विष्णुदूतगण यमदूतगण के प्रति बोले-"श्रीं हरि का नामोच्चारण ही समस्त पापीगण का सुनिष्कृत अथवा उत्तम प्रायश्चित्त-जिससे श्रीविष्णु की उनसे सम्बन्धित मति हो जाती है।" इस श्लोक की श्रीधरस्वामी पाद की व्याख्या का तात्पर्य यह है, श्रीविष्णु नामकीर्तन, पातक, अतिपातक, महापातकादि सर्वप्रकार के पाप का श्रेष्ठ एवं परम पवित्र प्रायश्चित है। इस कारण इस नाम उच्चारण से नामोच्चारणकारी के प्रति यह व्यक्ति मेरा ही है एवं सब प्रकार से मेरे द्वारा रक्षणीय श्रीविष्णु की इस प्रकार की मति का उदय हो जाता है। इस श्लोक का अभिप्राय यह है कि अन्य शास्त्रों में लिखित चान्द्रयणादि प्रायश्चित्त से पाप तो नाश होता है किन्तु पापवासना का नाश नहीं होता है। वरन् मैं निष्पाप हूँ, यह अभिमान चित्त में उदित होकर उसे कलुषित करता है। श्रीनामकीर्तन प्रायश्चित का महत्व यह है जो नाम उच्चारण

Scanned with CamScanner

करते हैं उसके हृदय में 'मैं विष्णु का नाम करता हूँ' उस प्रकार का अनुसन्धान न रहते हुए भी श्रीविष्णु को उस नामोच्चारणकारी की बात स्मरण-रहती है। वे मन में सोचते है—यह व्यक्ति जब मेरा नाम लेता है तब यह मेरा दास है— अपने दास की रक्षा करना सर्वदा ही मेरा कर्त्तव्य है। और नामोच्चारण से जिसके चित्त में भगवत्स्मृति का उदय हो, उसके विषय में विशेष बात यह है कि समस्त दोष का उत्पत्ति-स्थान भगवत्विस्मृति एवं समस्त गुण की उत्पत्ति-स्थान भगवत्स्मृति इसलिए ही नामोच्चारण श्रेष्ठ प्रायश्चित है। इस कारण श्रीनामकीर्तन से श्रीहरि में स्वाभाविक आवेश का उदय होता है। अतएव श्रीभगवन्नाम भगवतस्वरूप भूत अर्थात् भगवन्नाम वर्णरूपी साक्षात् भगवदवतार है इसलिए नाम और नामी के अभिन्नत्व हेतु एवं स्वभाव से ही भगवदविषय में आवेश जनक इसलिए श्रीनाम का एक देश-श्रवण से भी परमभागवतगण का प्रीतिकर हो जाता है। पद्मपुराण- उत्तरखण्ड में श्रीरामचन्द्र के अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र में महादेवी के प्रति श्रीशिव का वाक्य यथा—

"रकारादीनि नामानि श्रृण्वतो देवि जायते।
प्रीतिर्मे मनसो नित्यं रामनाम-विशंकया॥"

"हे देवि! रकारादि-नाम समूह के श्रवणकाल में रामनाम शंका से मेरे चित्र में प्रीति का उदय हो जाता है।"

Scanned with CamScanner

अतएव पापनाशक मात्र जो नाम कीर्तन की महिमा कही गई है वह अतिशय तुच्छ है। वस्तुतः नामकीर्तन के फलविषय में श्रीपाद् कवि योगीन्द्र महाराज ने निमि के प्रति कहा है–

"एवंव्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकवाह्यः॥"
(भाः ११/२/४०)

अर्थात् "इस प्रकार व्रतविशिष्ट व्यक्ति स्वप्रिय नामकीर्तन द्वारा जातानुराग एवं द्रुतचित्त होकर हास्य, रोदन, उच्चशव्द, उन्माद तुल्य गान एवं लोकवाह्य नृत्य करता रहता है।" श्री भगवन्नाम कीर्तन का मुख्यफल श्री भगवान के चरणों में प्रेमलाभ। "नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय" "कृष्णनाम महामन्त्रेर एइ त स्वभाव। येइ जपे तार कृष्णे उपजये भाव।। "कृष्ण नामेर फल प्रेमा सर्व्वशास्त्रे कय," इत्यादि (चैः चैः) श्री पाद कवि योगीन्द्र निमि महाराज के निकट "एवं श्रृण्वन-सुभद्राणि रथाङ्गपाणेः" इत्यादि श्लोक में कहा है, – हे राजन्। 'जो व्यक्ति चक्रपाणि श्री भगवान के सुमंगलमय जन्म, कर्म एवं नाम निर्लज्ज होकर श्रवण, कीर्तन या गान करते हैं वे सर्वापेक्षा-शून्य होकर धरणी पर विचरण करते हैं।' इसके बाद "एवं व्रत" इस श्लोक में कहा है- यद्यपि वे इस प्रकार व्रत या नियम जीवन में अवश्यकर्तव्य रूप से निर्द्धारण करते हैं फिर भी "स्वप्रियनाम कीर्त्या" निज अभीष्ट प्राणवल्लभ के

Scanned with CamScanner

जो सब नाम निज को प्रिय उन सब नामकीर्तन के द्वारा ही निज अभीष्ट चरण में अनुराग या भावप्रेम का आविर्भाव हो जाता है। प्रेमोदय होने से ही चित्त सातिशय द्रवित होता है, तव वे कभी हास्य, रोदन, उच्चशव्द, गान, एवं उन्मत्त के समान नृत्य करते रहते हैं। यह सभी प्रेमोदय के अनुभाव या कार्य हैं। इस श्लोक के "स्वप्रियनामकीर्त्या" इस पद में तृतीया विभक्ति का प्रयोग कर बता रहे हैं कि, प्रेमप्राप्ति के वहुविध साधन की बात शास्त्र में लिखित रहने पर भी श्रीनामकीर्तन ही सर्वसाधन के बीच में मुख्यतम उपाय है। इस श्लोक में "एवंव्रत" इस पद के बाद 'अपि' शव्द का उल्लेख न रहने पर भी उसे अध्याहार कर के लेना होगा। अर्थात् इस प्रकार का नियम रहने पर भी नाम कीर्तन ही भगवतप्रेम का मुख्य-प्रापक है। अतएव इस श्लोक के परवर्ति "भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र" इत्यादि श्लोक की टीका के चूर्णिका या आक्षेपवाक्य में लिखा है, आरूढ़ योगी महापुरुषगण की भी ये अवस्था बहुजन्म में भी दुष्प्राप्य, वह नाम कीर्तन मात्र से ही एक जन्म मे ही किस प्रकार सम्भव पर हो सकती है? उसके उत्तर में कहते हैं—"भक्तिः परेशानुभवो-विरक्तिरन्यत्र" इत्यादि जिस प्रकार भोजन मे प्रवृत्त व्यक्ति का प्रति ग्रास ग्रास में तुष्टि, पुष्टि और क्षुधानिवृत्ति एक ही समय मे हो जाती है, उसी प्रकार भजन में प्रवृत्त भक्त के भजनानुरूप भक्ति, भगवदनुभव

Scanned with CamScanner

और विषय वैराग्य एक ही समय उत्पन्न हो जाते है। श्रीभगवन्नाम कौमुदी ग्रन्थ में एवं सहस्त्र नाम भाष्य में भी उद्धृत पुराणान्तर का वाक्य यथा—

"नक्तं दिवा च गतभीर्जितनिद्र एको,
निर्विन्न इंगितपथो मितभुक प्रशान्तः।
यदयुच्यते भगवति स मनो न सज्जे,
न्नामानि तदरतिकराणि पठेदलज्जः॥" इति।।

"दिन और रात्रि में निर्भय, जितेन्द्रिय, निःसङ्ग, निर्विन्न, आध्यात्मिक जगत में दृष्टियुक्त, मितभुक एवं प्रशान्त होकर भी यदि कोई भगवान् श्री अच्युत मे मन की आसक्ति लाभ न कर पाये तो वह व्यक्ति लज्जा त्याग कर उच्चस्वर से श्री भगवान् की रतिदायक श्रीहरि का नाम-कीर्तन करें।" इस श्लोक में "गतभीः" इत्यादि जिन सब गुणों की बात का उल्लेख किया गया है उसके उद्देश्य से यह सब गुण रहने से एकमात्र नाम ही तत्परता-सम्पादन करता है। किन्तु यह सब गुण नामकीर्तन के अंगरूप या कारण स्वरूप नहीं है।

अर्थात यह सब गुण रहते ही मानव नाम कीर्तन का अधिकार लाभ करेंगे, ऐसा नहीं है। कारण भक्ति का अंग मात्र ही निरपेक्ष है। वरन् सवगुण हीन दीनजन ही दीनानाथ श्रीहरि के एवं पतित पावनी भक्ति महारानी के अधिक करुणा के पात्र हो जाते है। "दीनेरे अधिक दया करे भगवान्। कुलीन, पंडित

Scanned with CamScanner

ज्ञानीर बड़ अभिमान।।" जिस कारण निखिल-साधन मुकुट मणि श्रीनामसंकीर्तन जो अन्य अपेक्षा-शून्य होगे- यह कहने की आवश्यकता ही नही है। जिस प्रकार श्रीविष्णु धर्मोत्तर सर्वपातक, अतिपातक, महापातककारी द्वितीय क्षत्रबन्धु के उपाख्यान में वर्णित है—

व्राह्मण उबाच—

"यद्येतदखिलं कर्त्तु न शक्नोसि ब्रवीमि ते
स्वल्य मन्यन्मयोक्तं भो करिष्यति भवान यदि॥

क्षत्रवन्धु का उवाच—

"अशक्यमुक्तं भवताचञ्चलत्वाद्धि चेतसः।
वाक्शरीर विनिष्पादयं यच्छक्यं तदुदीरय॥"

व्राह्मण उवाच—

उत्तिष्ठता प्रस्वपता प्रस्थितेन गमिष्यता।
गोविन्देति सदा वाच्यं क्षुत्तृट प्रस्खलितादिषु॥"

व्राह्मण ने कहा—'हे राजन्! मैने तुम्हें जो सब साधन की बात उल्लेख की, तुम यदि वह करने में असमर्थ हो, तो मैं सहज साध्य-साधन की बात बोलता हूँ, तुम उसी का अनुष्ठान करो।' उसके उत्तर में क्षत्रवन्धु ने कहा, आपने जिस साधन की बात का उल्लेख किया, चित्तचाञ्चल्य के कारण वही साधन मेरे पक्ष में दुःसाध्य प्रतीत होता है। यदि वाक्य और देह के द्वारा साध्य कोई सहज साधन हो, तो मेरे पास

Scanned with CamScanner

उसका वर्णन कीजिए। तव ब्राह्मण बोले,- हे राजन! तुम उठते हुए, निद्रा, प्रस्थान भावी गमन इत्यादि सब कार्य में एवं क्षुधा, तृष्णा, प्रस्खलनादि जिस किसी भी अवस्था में सदा 'गोविन्द' नाम का उच्चारण करो। इसके द्वारा नाम कीर्तन किसी देश, काल अथवा अवस्था विशेष की अपेक्षा नहीं करता यह समझा गया।

"न देश नियम स्तत्र न काल नियम स्तथा।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति हरेर्नाम लुब्धकः॥"
"खाइते- शुइते यथा-तथा नामलय।
काल देश नियम नाहि सर्व्वसिद्धि हय॥"
(चैः चः अन्त्य २३ परिः)

अतएव श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के अन्त में जीव के प्रकृत श्रेयः जानने के लिए महाराज परीक्षित के प्रश्नमूलक जो सब श्लोक हैं, उसके बाद द्वितीय स्कन्ध के प्रारम्भ मे उनके सर्वोत्तम उत्तर-दान के अभिप्राय से श्री पादशुकदेव मुनि ने पहले श्रीमद्भागवत की महिमा वर्णन की-

"इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
अधीतवान् द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम्॥
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोक लीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥

Scanned with CamScanner

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान।
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती॥"
(भाः २/१/८-१०)

अर्थात् "हे राजर्षे! मैने द्वापर युग के अन्त मे अपने पिता श्रीव्यासदेव के पास से श्रीमद्भागवत-नामक इस वेदतुल्य महा-पुराण का अध्ययन किया था। तुम मन मे सोच सकते हो कि ब्रह्मानन्दी सिद्धपुरूष होकर भी मेरी अध्ययन मे प्रवृत्ति किस प्रकार हो सकती है? उसके उत्तर में कहता हूँ कि मैंने निर्गुणब्रह्म मे सर्वतोभाव से निष्ठाप्राप्त होकर भी श्री हरि की लीला के द्वारा आकृष्टचित्त होकर ही श्रीमद्भागवत के आख्यान का अध्ययन किया था। इस आख्यान के प्रति श्रद्धावान पुरूष की श्रीकृष्ण में अव्यभिचारिणी मति का उदय होता है। तुम्हारे निकट इस भागवताख्यान का वर्णन करूँगा कारण तुम परमभागवत रूप से प्रसिद्ध हो।" इस प्रकार श्रीमद्भागवत के माहात्म्य-वर्णन-पूर्वक श्रीमद्भागवतकथा के उपक्रम से भक्ति के विविध अंग के मध्य मे सर्वश्रेष्ठ साधनाङ्ग श्रीनामसंकीर्त्तन ही उपदेश कर रहे हैं। जिस कारण सब साधन अपेक्षा श्रीनामसंकीर्तन ही श्रीभगवान में शीघ्र उन्मुखता एवं आवेश सम्पादन में समर्थ है। इसलिए सर्वसाधारण के पक्ष में परम साधन और परम साध्य रूप से श्रीनामकीर्तन का ही उपदेश कर रहे हैं—

Scanned with CamScanner

"एतन्निर्विद्यमानानामिच्छताम कुतो भयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम॥"

(भा: २/१/११)

"हे राजन्! सकाम, मुमुक्ष और ज्ञानी सभी के पक्ष में श्री हरिनाम कीर्तन ही परम साधन रूप से निर्णीत हुआ है।" इस श्लोक की श्रीधरस्वामी पाद की टीका यथा—"साधकानां सिद्धनाञ्च नातः परमन्यत् श्रेयोऽस्तीत्याह-एतदिति। इच्छतां कामिनां तत्तत्फलसाधनमेतदेव, निव्विर्दयमानानां मुमुक्षाणां मोक्ष मोक्षसाधनमेतदेव योगिनां ज्ञानिनां फलष्णोन्तदेव निर्णीतम; नात्र प्रमाणं व्यक्तव्यमित्यर्थः।" अर्थात साधकगण का और सिद्धगण का श्रीहरिनाम-कीर्तन-अपेक्षा परम श्रेयः और अन्य कुछ नहीं है। कामिगण के सम्बन्ध में यह हरिनाम कीर्तन ही कामानुरूप विविध-फल का साधक है। मुमुक्षुगण के सम्बन्ध से यही मोक्षसाधन है। ज्ञानीगंण की भी ज्ञानसाधना का यही फलरूप में निर्णीत हुआ है। इस विषय में और किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं है। यह नाम कीर्तन उच्चस्वर से करना ही प्रशस्त है। इस कारण श्रीनारद कहते है, "नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्" (भा: १/६/२६) 'मैं अनन्त श्रीभगवान के नाम लज्जाशून्य होकर पाठ करता' इसके द्वारा उच्चस्वर से कीर्तन की बात कही गई है। कारण मन ही मन में जप करने से किसी लज्जा की अपेक्षा ही नहीं रहती है। उच्चस्वर से कीर्तन करने

Scanned with CamScanner

से कौन मन में क्या कहेगा (सोचेगा) इस प्रकार लज्जा आ सकती है। उच्चसंकीर्तन के गुण सम्बन्ध में श्री चैतन्य भागवत में देखा जाता है—

"उच्च करि करिले गोविन्द-संकीर्त्तन।
जन्तुमात्र शुनियाइ पाइ विमोचन॥
जिव्हा पाइआओ नर-विना सर्व्वप्राणी।
ना पारे वलिते कृष्णनाम-हेन ध्वनि॥
व्यर्थजन्मा इहारा निस्तरे याहा हैते।
वल देखि,-कोन् दोष से कर्म्म करिते?
केह आपनारे मात्र करये पोषण।
केह वा पोषण करे सहस्त्रेक जन॥
दुइते के वड़ भावि' वुझह आपने।
एइ अभिप्राय गुण उच्चसंकीर्त्तने॥"
जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन श्रोतृन् पुनाति च॥
(श्रीनारद पुराण)

"श्रीहरिनाम-जपकारी व्यक्ति-अपेक्षा उच्चस्वर से कीर्तन कारी सौ गुना श्रेष्ठ है। कारण यह है कि जप-कर्त्ता केवल अपने को ही पवित्र करता है, किन्तु उच्चस्वर से कीर्तनकारी अपने को एवं श्रोतृवृन्द को यानि सभी को ही पवित्र कर देता है।"

Scanned with CamScanner

शास्त्र और महाजनवाणी से जो श्रीहरिनाम-संकीर्तन की इतनी अद्‌भुत महिमा का अनुभव करते हैं। अतएव जिससे किसी प्रकार के नामापराध का उद्‌गम न हो पाये उस भाव से ही नाम-साधकगण को नाम कीर्तन करना विधेय है, अपराध-उद्‌गम के मौलिक कारण श्रीमत् जीव गोस्वामिपाद ने दिखा दिये है—"श्रद्धाभक्तिशव्दाभ्यामत्रादर एव विधीयते। अपराधास्तु सर्व्वे अनादरात्मका एव, प्रभुत्वावमानतश्च। तस्मादपराधनिदानमत्रानादर एव परित्याज्य इत्यर्थः।" अर्थात श्रद्धा और भक्ति शव्द द्वारा आदर ही निहित हुआ है। तब समझना होगा कि समस्त अपराध ही-अनादर मूलक यह प्रभुत्व की अवमानना के निमित्त ही होता है। अतएव अपराध का मूल कारण अनादर ही परित्याज्य है, समझना होगा। 'नाम' इस उपलक्षण से श्रवण कीर्त्तनादि अंग युक्त भक्ति देवी ही लक्षिता होती है- नामोपलक्षिता भक्तिदेवी" श्रीभाः (६/२/६-१०) (श्लोक की सारार्थदर्शिनी टीका) अतएव भक्ति देवी को परम आदर, यत्न और सम्मान के सहित सर्वशिरोमणि कर रखना होगा। उनके प्रति सर्वापेक्षा गौरव और सम्मान-प्रदर्शन करना होगा, श्रद्धा और विश्वास के साथ उनकी सेवा करनी होगी। वे जिसको प्यार करें उन उन वैष्णव भक्तगण को आदर-सम्मान करना होगा। प्यार करना होगा, उनकी महिमा-कीर्तन से आनन्दित होना होगा, नहीं तो

Scanned with CamScanner

उनके प्रति अपराध होगा। श्रील जीवगोस्वामिपाद ने लिखा है—अत्र पाद्मोक्ता दशापराधाः परित्याज्याः यथा सनत कुमार के वाक्य से—

" सर्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयात्
हरेरप्यपराधान् यः कुर्य्याद्विपदपांसनः।
नामाश्रयः कदाचित् स्यात् तरत्येव स नामतः,
नाम्नोऽपि सर्व्वसुहृदो ह्यपराधात् पतत्यधः॥"

"मानव सर्वप्रकार अपराध करके भी श्रीहरि का आश्रय ग्रहण करने से उस अपराध से मुक्त हो जाता है। कोई नराधम यदि श्रीहरि के चरणों में ही अपराध करे, वह कदाचित् श्री हरि के नामाश्रय करने से अपराध से मुक्त हो सकता है। किन्तु सर्वसुहृत् श्रीनाम के प्रति अपराध से अधःपतन ही हो जाता है।" अतएव जो श्री हरिनाम कीर्तन का फल लाभ कर धन्य होने की इच्छा करे, उन्हें श्रीपद्मपुराणोक्त दस प्रकार के नामापराध को यत्न सहित परिहार (त्याग) करना चाहिए। तद यथा—

सतां निन्दा नाम्नः परमपराधं वितनुते,
यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगर्हाम।
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि-सकलं,
धिया भिन्नं पश्येत स खलु हरिनामा हितकरः॥
गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्रनिन्दनं तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम।

Scanned with CamScanner

नाम्नो वलाद् यस्य हि पापबुद्धिर्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः॥
धर्मव्रत त्याग हुतादि-सर्व्व-शुभ क्रियासाम्यमपि प्रमादः।
अश्रद्धधाने विमुखे ऽप्य श्रृण्वति यश्चोपदेशः शिवनामापराधः॥
श्रुत्वापि नाममाहात्म्यं यः प्रीति रहितोऽधमः
अहंममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत्॥" इति।

(१) साधुनिन्दा :— सज्जनगण की निन्दा नाम के निकट अपराध बन जाती है। प्रश्न हो सकता है कि साधुगण की निन्दा से साधु के प्रति अपराध होना चाहिए, नाम के निकट अपराध क्यों होगा? इसके उत्तर में कहते है कि साधुगण के द्वारा ही तो श्रीनाम विश्व में प्रसिद्धि लाभ करते हैं, अतः वे (श्री नाम) उनकी (साधुगण) निन्दा किसी रूप में सहन नहीं कर सकते हैं। साधुनिन्दा अत्यन्त गुरुतर अपराध होने के कारण इसको महदपराध भी कहा गया है एवं नामापराध में इसको प्रथम अपराध कहा गया है। अनेक लोग सोचते हैं कि साधु यदि निन्दनीय कार्य करे तो उसकी समालोचना से अपराध नहीं होगा क्योंकि यह तो एक सत्य बात है। वास्तव में इस प्रकार की धारणा भी-अपराध-जनक है। "निन्दनं दोष कीर्तनं " (भागवत टीका-श्रीधर स्वामी) दोष कीर्तन का नाम ही निन्दा है, इसमें इस बात का कोई विचार नही है कि वह दोष सत्य है अथवा मिथ्या। कारण "सूचकस्यापि तद्भवेत्" दोष की सूचना करने से सूचना देने

Scanned with CamScanner

वाले में भी उसका संक्रमण हो जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद ने माधुर्य कादम्बिनी ग्रन्थ में कहा है कि ऐसा विचार संगत (ठीक) नहीं है कि केवल कृपालु, अकृतद्रोह, तितिक्षु (सहिष्णुता) आदि गुण सम्पन्न हैं उन्ही को शास्त्र 'साधु' कहने का निर्देश कर रहे हों, इसलिए उनकी निन्दा से ही अपराध होगा जो इन सब गुणों से सम्पन्न नही हैं, उनकी निन्दा से अपराध नहीं होता है। वस्तुत: "सर्वाचार विवर्जिता: शठधियो व्रात्या जगतवञ्चका:" अर्थात् जो सर्वाचार विवर्जित, शठवुद्धि, पतित, जगतवञ्चक इस प्रकार के व्यक्तियों का भी यदि भगवद्भजन हो तब तो उनको भी साधु ही मानना होगा। कारण यह है अनन्य भक्त दुराचारी होते हुए भी उसको साधु मानने का आदेश श्रीकृष्ण ने श्रीगीता में स्वयं प्रदान किया है-

"अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:॥"

(गीता- ६/३०)

"हमारी भक्ति का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव है कि यदि अति दुराचारी व्यक्ति भी अनन्य भाव से मेरा भजन करे अर्थात 'वासुदेव ही सर्वमय' हैं, इस भाव से देवान्तर में आसक्तिशून्य होकर मेरा भजन करे, वे साधु कहकर ही माने जायेंगे। कारण वे उत्तम अध्यवसाय विशिष्ट अर्थात शीघ्र ही वे दुराचारत्व त्याग कर धर्मात्मा होंगें।" इसलिए उन्हें भी

Scanned with CamScanner

'साधु' ही मानना होगा, उनकी निन्दा से भी अपराध होता है। श्रील जीवगोस्वामिपाद ने कहा है—"सतां निन्दा" इत्येनेन हिंसादीनां वचनागोचरत्वं दर्शितम्" अर्थात यदि "सतां निन्दा" इस श्लोक से इस प्रकार मन मे आता है कि साधुगण की निन्दा करने से ही नामापराध होता हैं हिंसा आदि से कुछ नहीं होता है, उसके उत्तर में कहते हैं, महत् की निन्दामात्र ही दोष है, हिंसा आदि तो वाक्य के अगोचर दोष या घोरतर-महत् अपराध कहकर ही जानना होगा। स्कन्द पुराण में मार्कन्डेय-भागीरथ संवाद में लिखा है—

"निन्दां कुर्व्वन्ति ये मूढ़ा वैष्णवानां महात्मनाम्।
पतन्ति पितृभिः सार्द्धं महारौरव संज्ञिते॥
हन्ति निन्दन्ति वै द्वैष्टि वैष्णवान् नाभिनन्दति।
क्रुध्यते याति सो हर्ष दर्शने पतितानि षट॥"

"जो सब मूढ़ व्यक्ति वैष्णव-महात्मागण की निन्दा करते हैं, वे पितृकुल के सहित महारौरव नरक में गिरते हैं। जो वैष्णव की हत्या करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं, उनका अभिनन्दन नहीं करते, उन पर क्रोध करते हैं, उनके दर्शन से आनन्दित नहीं होते, यह छः प्रकार के दुर्जन ही अधःपतित होते हैं।" स्वयं तो साधु की निन्दा करना तो दूर, अन्य के मुख से भी साधु का निन्दा श्रवण करना भी निन्दा करने के समान ही अपराधजनक है यथा—

Scanned with CamScanner

"निन्दां भगवतः श्रृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा।
ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्युतः॥"
(भाः १०/७४/४०)

"श्री भगवान् की एवं भगवद्भक्तगण की निन्दा सुनकर जो व्यक्ति वहाँ से चला नहीं जाता, वह पूर्वसञ्चित सुकृति से वञ्चित होकर अधःपतित होता है।" इस स्थल पर वह स्थान त्याग करना किन्तु प्रतिकार में असमर्थ-व्यक्ति के पक्ष में ही जानना होगा। यदि समर्थ हैं- वह व्यक्ति निन्दाकारी की दुष्ट-जिह्वा का छेदन करे, एवं स्वयं अपने प्राण का भी परित्याग करे। श्रीशिवनिन्दा सुनकर श्रीसतीदेवी ने इसी प्रकार का विधान दिया है, यथा—

"कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे,
धर्मावितर्यसृणिमिर्नृ भिरस्य माने।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे-
ज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः॥"(भाः ४/४/१७)

"निरंकुश (स्वेच्छाचारी) मानव यदि महापुरुष की निन्दा करे श्रवणकारी यदि निन्दाकारी को मारने एवं मरने को असमर्थ हो, तो दोनों कानों अंगुली देकर उस स्थान से बाहर चला जाये। और यदि समर्थ हो तो इस प्रकार के निन्दावचन जिस जिह्वा से निकले हों, उस दुष्ट जिह्वा का छेदन करें एवं अपने प्राणत्याग करें।" इस प्रकार का प्रायश्चित ही

Scanned with CamScanner

साधुनिन्दा-श्रवणकारी के पक्ष में कर्त्तव्य है। तभी "वैष्णवेर ठाँइ सदा हवे सावधान। कोनरूपे कारो येन नहे अपमान।" किसी भी रूप में वैष्ठव-निन्दा-श्रवण-कीर्तन करने से ही सर्वनाश।

(२) श्री विष्णु से श्रीशिव के गुण नामादि के वुद्धि के द्वारा भी पृथक् दर्शन करने से नामापराध होता है। अर्थात जो व्यक्ति श्रीविष्णु एवं श्रीमहादेव को पृथक शक्ति सिद्ध मानता है उनके गुणनामादि के पृथक दर्शन या स्वातन्त्र्य मानता है वह व्यक्ति नामापराधी है। वस्तुतः श्रीविष्णु ही सर्वेश्वर एवं अज भव आदि उनकी शक्ति से शक्तिमान है। श्री गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है—

"यद यद विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वंमम तेजो अंशसम्भव॥" (१०/४१)

"हे अर्जुन! जो जो ऐवश्चर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उसको तुम मेरे तेज के अंश की अभिव्यक्ति जानो।" श्री वलदेव ने भी कहा है - "व्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः" इति। (भाः १०/६८/३६) "व्रह्मा, महादेव, लक्ष्मी एवं मैं भी जिसकी कला की कला या अंश के अंश है।" श्रीकपिलदेव ने भी माता देवहूति के प्रति कहा है— यत्पाद निःसृत सरित् प्रवरोदकेन, तीर्थेन, मूर्धन्यधिकृेन शिवः शिवोऽभूत" इति। "हे मातः! जिसके श्रीचरणप्रक्षालन से

Scanned with CamScanner

आविर्भूता सरित्श्रेष्ठा महातीर्थ स्वरूपिणी श्रीगंगा का जल मस्तक पर धारण कर श्रीशिव विश्व के मंगल प्रदाता हुये हैं।" इसलिए जो श्रीविष्णु के एकान्त भक्त हैं वे श्रीशिव को परम वैष्णव ही मानते हैं। श्रीमदभागवत के द्वादश स्कन्ध में "वैष्णवानां यथा शम्भूः" अर्थात् वैष्णवगण में श्रीमन्महादेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। अतएव शुद्धभक्तगण श्रीशिव को वैष्णव श्रेष्ठ मानकर ही भजन करते है, कदाचित् कोई कोई शिव को श्रीविष्णु का अधिष्ठान या गुणावतार कहकर भी सम्मान करते हैं। यदि किसी के मन में इस प्रकार का प्रश्न उठता है कि पद्मपुराण के मूलश्लोक में श्रीविष्णु और श्रीशिव के गुणनामादि को अभिन्न-मनन करने की बात कही है, इस प्रकार की व्याख्या से तो भेद दृष्टि ही की गई है? इसके उत्तर में श्रीजीव गोस्वामिपाद् ने लिखा है-"द्वयोरभेद-तात्पर्येण षष्ठयन्तत्वे सति श्रीविष्णोश्चेत्यपेक्ष्य 'च' शव्द क्रियते। तत्प्राधान्य विवक्षयैव श्री शव्दश्च तत्रैव दत्तः। अतएव शिवनामापराध इति 'शिव'-शव्देन मुख्यतया श्री विष्णुरेव प्रतिपादित इत्यभिप्रेतम। सहस्त्रनाम्नादौ च 'स्थानु' 'शिवादि' शव्दास्तथैव।" मूल श्लोक के "शिवस्य श्रीविष्णोः" इस वाक्य के "श्रीविष्णोः" पर यदि पञ्यम्यन्त न होकर षष्ठयन्त रूप में अभिप्रेत होता अर्थात श्री शिव और श्रीविष्णु के गुणनामादि इस प्रकार के अर्थ ही अभिप्रेत होते तो "श्रीविष्णोः" इस पदके

Scanned with CamScanner

बाद समुच्चयार्थ-वोधक एक 'च' कार शब्द अवश्य ही प्रदत्त होता। परन्तु वह प्रदान न होने से "श्रीविष्णोः" पद-पञ्चम्यन्त जानकर श्रीविष्णु से श्रीशिव के गुणनामादि इस प्रकार अर्थ ही संगत है। अतएव यहाँ पर दोनों का अभेद तात्पर्य नहीं है। कारण शास्त्र से अभेद-दर्शन से दोष भी सुना जाता है—

"यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मारूद्रादिदैवतेः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषन्डी भवेदध्रुवम्।।"

(वैष्णवतन्त्र-वचनम्)

अर्थात "जो व्यक्ति श्रीनारायण को ब्रह्मा-रूद्रादि देवता के सहित समान मानते है, वे निश्चित रूप से पाषन्डी हो जाते हैं।" "श्रीविष्णोः" इस पद में "श्री" शव्द श्री विष्णु को प्रधान कहने की इच्छा से प्रदत्त हुआ है। अतएव परवर्ती श्लोक में "शिवनामापराधः" इस प्रकार का उल्लेख रहने से शिव-शव्द से मुख्य रूप में श्रीविष्णु को ही प्रतिपादित किया गया है। कारण "श्रीहरिनामापराध" स्थल पर "शिवनामापराध" उल्लेख करना अप्रासंगिक है। सहस्त्रनाम स्तोत्र में भी स्थानु एवं शिवादि शव्द श्री विष्णुप्रतिपादक-रूप में ही उल्लेख किया है।

(२) गुवर्वज्ञा— भजनेच्छु साधकगण को गुरुतत्त्व से अवगत होकर ही श्रीहरि का भजन करना आवश्यक है। "कृष्ण गुरुरूप हन शास्त्र प्रमाणे। गुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भाग्यवाने।। (चैः चः) श्री गुरु की किसी प्रकार अवज्ञा करने

Scanned with CamScanner

या मनुष्य बुद्धि करने से नामापराध होता है। श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा है–

"आचार्य मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।
न मर्त्यवुद्धयासूयेत सर्व्वदेवमयो गुरुः॥"

(भाः ११/१६/२६)

"श्रीगुरू को मेरा स्वरूप ही जानना चाहिए, कभी भी उनकी अवमानना नहीं करनी चाहिए। मनुष्य वुद्धि से उनके प्रति ईर्ष्या/द्वेष न करो, कारण श्रीगुरु सर्व देवमय हैं।" इसलिए पारमार्थिक कल्याण के इच्छुक साधक को श्रीगुरु में अवश्य भगवदज्ञान करना चाहिए, मर्त्यवुद्धि से सब साधकों का वैफल्य सुना जाता है। श्री नारद ने श्री युधिष्ठिर के प्रति कहा है–

" यस्य साक्षाद् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत्॥"

(भाः ७/१५/२६)

"ज्ञानदीप-प्रदाता श्रीगुरु साक्षात् भगवतस्वरूप हैं, जो व्यक्ति उनके प्रति 'ये मनुष्य हैं' इस प्रकार की असत्वुद्धि का पोषण करता है, उसका समस्त साधन ही हाथी स्नान के समान व्यर्थ हो जाता है।" श्रीमद् जीवगोस्वामिपादलिखते है– "शुद्धभक्तास्त्वेके श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवता महाभेददृष्टिं तत्प्रियतम-त्वेनैव मन्यन्ते" (भः सः २१३ अनुः) अर्थात् कोई कोई शुद्धभक्त श्री गुरुदेव और श्रीशिव को श्रीभगवान के

Scanned with CamScanner

प्रियतम रूप से अभेद दृष्टि करते हैं। श्रीमनः शिक्षा में श्री रघुनाथ दास गोस्वामिपाद ने भी लिखा हैं।-"गुरुवरं मुकुन्द श्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्त्रं ननुमनः" अर्थात हे मन! श्रीगुरुदेव के मुकुन्द श्रेष्ठत्वे निरन्तर स्मरण करो।' अतएव महिमा मे और प्रियत्व मे ही श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्ण के साथ अभिन्न कहा गया है। श्रीगुरु कृष्ण शक्ति-कृष्णप्रेष्ठ अर्थात् श्रीकृष्ण की करुणाशक्ति का ही मूर्त विग्रह हैं। इसलिए शिष्य को सर्वदा श्रीगुरूदेव के सदगुण समूह का ही चिन्तन करना चाहिए। श्रीगुरूदेव के दिव्यविग्रह के स्वभावजनित किसी औपाधिक दोष के प्रति शिष्य को दृष्टिपात नहीं करना चाहिए। श्रीगुरु के उपदेश के अनुसार भजन न करना, तदुपदिष्ट मन्त्र जप न करना, एवं मन्त्र के अर्थ की चिन्ता न कर जप करने से भी श्रीगुरु की अवज्ञारूप अपराध होता है। जो जानते हैं कि श्रीहरि ही भजनीय है एवं भजन के द्वारा ही उन्हे पाया जाता है, श्रीगुरु ही वह भजनोपदेष्टा एवं पूर्व में श्रीगुरुचरणाश्रित भक्तगण ही श्रीभगवान को प्राप्त हुए हैं इस प्रकार जानते हुए भी यदि मानते हैं कि गुरुकरण अनावश्यक, नाम संकीर्तन के द्वारा ही भगवत्प्राप्ति होगी, तो उसका भी गुर्ववज्ञारूप अपराध होता है, इस लिए उसकी भगवत्प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु इस जन्म मे वाद के जन्म में या उस अपराध के अपगम से श्रीगुरु के चरणाश्रय पूर्वक भजन करने से ही श्रीभगवान को प्राप्त होगा।

Scanned with CamScanner

(४) श्रुति और तदनुगत शास्त्र की निन्दा :- श्रुति अपौरुषेय है। इसलिए वैदिक पुरुष श्रुति को ही मुख्य प्रमाण कह कर स्वीकारते हैं एवं अन्य शास्त्रों को वेदानुगत कहकर ही मानते हैं। आस्तिक पुरुषगण के निकट वेद अपना अर्थ प्रकाश करते रहते हैं। "वेदयतीति वेद:" जो अपना अर्थ स्वयं प्रकाश करें वही वेद हैं। श्रीमद्भागवतादि वेदानुगत-शास्त्र है। वेद के अर्थ इतिहास, पुराणादि के द्वारा स्पष्ट किये गये हैं। इन सब शास्त्रों की किसी भी रूप में निन्दा करना अपराधजनक होगा।

माधुर्यकादम्बिनी ग्रन्थ में श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने लिखा है- कर्मकाण्डी एवं ज्ञानकांडी श्रुतिसकल देख कर जो मानते है कि यह सब श्रुति जब श्रीभगवद्भक्ति को स्पर्श नहीं करती है तव यह सब भगवत् वहिर्मुख द्वारा ही उद्‌गीत होने के योग्य है— यह बात मन मे आते ही यह नामापराध हो जाता है। कारण यह है कि ज्ञान और कर्म-प्रतिपादक श्रुतिसकल परम करुणा परायण है। वे भक्ति मार्ग के अनधिकारी, स्वेच्छा-सम्पन्न एवं अत्यन्त विषयासक्त व्यक्तिगण के प्रति करुणापरवश होकर उन्हें शास्त्र निर्दिष्ट पथ पर चलाने के लिए कृतसंकल्प होते हैं—इन समस्त श्रुति के सम्बन्ध में इस प्रकार का तत्त्वज्ञान करने से श्रुतिनिन्दा रूप इस अपराध से रक्षा पायी जा सकती है।

Scanned with CamScanner

(५) श्रीहरिनाम की महिमा मे अर्थवाद-मनन– शास्त्र और महाजनवाणी से श्रीहरिनाम की जो सब अतुलनीय महिमा की बात देखी जाती है, उसको मात्र स्तुति वाक्य मानने से अपराध होता है। वस्तुतः श्रीनाम के माहात्म्य सम्वन्ध में शत शत प्रमाण शास्त्र से ही प्रकाशित किये हैं, इन सब शास्त्र वाक्य को श्रीनाम का अर्थवाद या स्तुतिवाक्य कहकर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं हैं। "रोचनार्था फलश्रुतिः" यह कर्मकाण्ड का वाक्य है, इससे नितान्त वहिर्मुख मानवगण को कर्मकाण्ड मे प्रवर्तित करने के लिए अधिक फल की बात कही गई है यह सब ही स्तुतिवाद है। श्री हरिनाम के समान कर्म, ज्ञान, ध्यान, व्रत, तपस्या, वैराग्य, मुक्ति आदि कुछ भी नहीं है, नाम ही सर्व कारण का कारण, परम आराध्य एवं परम प्रीति का आस्पद है। नाम की महिमा श्रुतिशास्त्र और महाजन वाक्य से चाहे जितनी भी वर्णित क्यों न हो, नाममहिमा सिन्धु के विन्दु का भी कोई वर्णन नहीं कर पायेगा। 'इतनी जो श्रीहरिनाम की अपार महिमा, यह नाम मे केवल मानव की रुचि उत्पादन के लिए शास्त्र, मात्र अतिवाद कर रहे हैं' यह बात मानने से कितना भयंकर नामापराध वह सहज मे ही अनुमेय है। अर्थवाद की आवश्यकता केवल विधि शेषत्वे अर्थात् अप्राप्त अर्थ सम्बन्ध से ही विधि का प्रयोजन होता है। श्री हरिनाम स्वतः ही परमस्वतन्त्र एवं स्वप्रकाशतत्त्व, नाम के

Scanned with CamScanner

प्रभाव प्रकट के सम्बन्ध में विधि की कोई अपेक्षा नही है। सूर्य को प्रकाशित करने के लिए प्रदीप जलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए नाम महिमा में अर्थवाद का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता है।

(६) प्रकारान्तर में श्री हरिनाम की अर्थकल्पना - श्री हरिनाम की महिमा के गौणत्व प्रतिपादन जन्य अन्य प्रकार की अर्थकल्पना। इस प्रकार की अर्थान्तर कल्पना अति भयंकर अपराध। श्री कूर्मपुराण-व्यासगीता में देखा जाता है।

" देवद्रोहाद् गुरुद्रोहः कोटि कोटि गुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकः॥"

"देवद्रोह से गुरुद्रोह कोटि कोटि गुण अधिक, ज्ञानापवाद अर्थात शास्त्र के यथार्थ तात्पर्य का अपलाप ही नास्तिकता है, यह गुरुद्रोह अपेक्षा भी कोटि गुण अधिक है।" अतएव नाम महिमा मे अविश्वास कर अर्थान्तर-चिन्तन रूप नास्तिकता कितनी भयंकर अपराध जनक यही चिन्तनीय है। प्रश्न हो सकता है, कि विष्णुदूतगण के निकट नाम महिमा श्रवण करके भी अजामिल ने जो कहा है,—"सोऽयं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे" अर्थात "मैने जो सब गुरुतर पाप किये हैं उन सब पापों के फल से मुझे निश्चय ही भीषण यातनामय नरक में जाना होगा।" अजामिल के इस वाक्य से मन में आता है कि नाममाहात्म्य-श्रवण करके भी उसका उसमें विश्वास नहीं है,

Scanned with CamScanner

वह भी नामापराधी है। किन्तु ऐसा नहीं है, इस विषय में अजामिल निजकृत दुष्कर्म के लिए अनुताप ही कर रहे हैं। यह उनके नाम-माहात्म्य में अविश्वास-जनित नही है, कारण उसके बाद ही उन्होंने कहा है—

"अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तम दर्शने।
भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति॥
अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः।
वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति॥"

(भा: ६/२/३२-३३)

"यद्यपि मैं नितान्त भाग्यहीन हूँ, तथापि उन देवश्रेष्ठगण के दर्शन के फल से मेरा निश्चय ही मंगल होगा, जिस कारण मैं चित्त की प्रसन्नता अनुभव कर रहा हूँ। अन्यथा कदर्यशील शूद्राणी वैश्या की संगकारी म्रियमाण मेरी जिह्वा क्या वैकुण्ठपति श्रीहरिनाम-ग्रहण कर पाती?" थोड़ी चिन्ता कर देखने से समझा जा सकता है कि, अचिन्त्य शक्तिशाली श्रीहरिनाम के असाधारण-माहात्म्य और प्रभाव के सम्बन्ध में विश्वास स्थापन करना मनुष्य के पक्ष में कुछ भी कठिन नही होगा। इस जगत में मणि-मन्त्र-महौषधि की कितनी अचिन्त्यशक्ति हम प्रत्यक्ष देखते है, किन्तु किस प्रकार उन सब वस्तुओं में इस प्रकार की शक्ति आई, यह हम वुद्धि विचार द्वारा निर्णय नहीं कर पाते हैं। इन सब प्राकृत वस्तुओं की शक्ति ही यदि हमारी विचार वुद्धि

Scanned with CamScanner

के अगोचर है तो अप्राकृत चिन्मय तत्त्व श्रीहरिनाम का प्रभाव या महिमा किस प्रकार से हमारी बुद्धिगोचर होगी ? तभी तो शास्त्र में देखा जाता है—

"अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्तस्य लक्षणम्॥

"जो सब विषय अचिन्त्य हैं उनमें तर्क की योजना मत करना, जो प्रकृति के अतीत वही अचिन्त्य है।" वस्तुतः भक्तिपथ के आश्रय से साधन भजन द्वारा हमारी बुद्धि जब प्राकृतगुण के अतीत या अप्राकृत होगी, तभी अप्राकृत वस्तु के तत्त्वग्रहण मे समर्थ होगी। अतएव अप्राकृत वस्तु के अनुभव के विषय में श्रद्धा और विश्वास की एकान्त आवश्यकता है, ऐसा न होने से समस्त साधन ही निष्फल हो जाते हैं।

(७) नाम के बल से पापाचरण मे प्रवृत्ति :- श्रीहरिनाम से केवल पाप समूह नष्ट हो जायेगे – यह मान कर इच्छापूर्वक पाप करना। यद्यपि नाम के बल से पाप आदि नष्ट होते हैं यह ठीक ही है; किन्तु नाम कीर्तनकारी जिस नाम बल से परम पुरुषार्थ रूप भगवतसेवासुख साधन में प्रवृत होते हैं, उस नाम बल से ही फिर अति घृणास्पद पापकार्य में मति होने से परम दौरात्म्य ही प्रकाश पाता है। श्रीनाम को निकृष्ट किया है इसलिए अनुष्ठित पाप अपेक्षा भी करोड़ो गुना अपराध होता रहता है। इस के लिए प्रायश्चित रूप में बहुत समय तक

Scanned with CamScanner

यम-नियमादि अनुष्ठान करके भी या यमराज प्रदत्त वहुकाल यम यातना भोग करके भी चित्तशुद्धि नहीं हो पाती है। तब क्या इस नामापराधी के नामापराध शोधन का कोई उपाय नही हैं? इसके उत्तर में कहा जा सकता है - श्रीनाम का एकान्त आश्रय लेने और निरन्तर श्रीनामकीर्तन से ही इसका प्रायश्चित हो जाता है। इस स्थान पर ज्ञातव्य विषय यह है कि श्रीनामग्रहण से समस्त अनर्थ दूर हो जाते है। यहाँ पर अनर्थ कहने से तात्पर्य पाप, पापबीज, अविद्या या वद्ध जीव के क्लेश से है। जैसे नाम ग्रहण से यह क्लेश या अनर्थ दूर होते है उसी प्रकार श्रद्धा के सहित नाम ग्रहण से हृदयदौर्बल्य रूप अनर्थ भी सहज में चला जाता है, तब भक्त की पाप कार्य मे पुनः मति या प्रवृत्ति नहीं होती है। इस प्रकार के भक्त की पूर्व संस्कार वशतः दैवयोग से यदि कोई पाप संघटित होता है, उसके लिए उसे पृथक प्रायश्चित की आवश्यकता नही है। "अज्ञानेओ यदि हय पाप उपस्थित। कृष्ण तारे शुद्ध करे ना करे प्रायश्चित्।।" (चैः चैः) किन्तु "मैं पापाचरण करूँगा" पहले से योजना बनाकर पापाचरण में प्रवृत्ति-यह ज्ञानकृत (जानबूझकर) है। इस प्रकार का पापाभिलाषी व्यक्तिगण ही नामापराधी है। अश्वमेधरूप भगवद् यज्ञ के बल से इन्द्र की जो वृत्तवध रूप पापवृत्ति दृष्ट है वह केवलमात्र विश्व की उपद्रव शान्ति एवं वृत्तासुर के असुरभाव खण्डन के विषय में

Scanned with CamScanner

अभिलाषी ऋषिगण के आदेश से अंगीकृत कहे जाने से इसमे कोई दोष नही है, ऐसा जानना चाहिए।

(८) अन्यशुभक्रियादि के साथ श्री हरिनाम की समता मनन — अर्थात् धर्म, व्रत, त्याग, होमादि शुभ कर्मादि के फल के साथ श्रीहरिनाम के फल को समान मानना। इसको श्रीहरिनाम के साथ प्रमाद या अनवधानता कहा जाता है— इससे श्रीहरिनाम को खर्व (निम्न स्तरीय) किया गया है इस कारण इसकी महापराध के रूप में गणना होती है। वस्तुत: शास्त्र और महाजन के मत से नाम और नामी (श्रीकृष्ण) अभिन्न हैं। "एकमेव सच्चिदानन्द रसादि रूपं तत्त्वं द्विधाविर्भूतं (श्री जीव गोस्वामिपाद) अर्थात् एक ही सच्चिदानन्द-रसादिरूप तत्त्व दो भाव से आविर्भूत है-"नाम" और "नामी"। नाम साक्षात् अक्षररूपी श्रीभगवान का कारुण्यघन अवतार-कभी भी प्राकृत इन्द्रियों के ग्राह्य नही है। भक्त की जिह्वादि इन्द्रिय नाम-सेवा मे प्रवृत्त होने से श्रीनाम स्वयं ही उसकी जिह्वा पर प्रकाशित हो जाता है। इस श्रीनाम का फल साक्षात् श्रीकृष्ण की प्रेमसेवा-प्राप्ति है। इसलिए श्रीनाम के फल को जो धर्म, व्रत आदि शुभ क्रियाओं के समान मानते हैं वे कितने बड़े नामापराधी है, यह विचारणीय है। उनका मुख दर्शन करने से भी सवस्त्र गंगास्नान कर श्रीविष्णुस्मरण करना ही कर्त्तव्य है। श्रीमद जीव गोस्वामिपाद ने लिखा है— "तदेवं-नाम्नः

Scanned with CamScanner

स्वातन्त्रोऽपि कर्म्मादेः पूर्त्युर्थं तदंगत्वेन कृतमपराध एव हुतादि सर्वशुभ क्रियासाम्यमपि पाद्मे दशापराधं गणितम्" अर्थात् श्रीनाम सर्वत्र ही परम स्वतन्त्र है, इसलिए कर्मादि के पूर्ति के निमित्त उसको कर्मांग रूप में नियोजित करने से भी इसे अपराध ही कहा जायेगा। प्रभासखण्ड मे लिखित है -"मधुरं मधुरमेत-मंगलं मंगलानां सकलनिगम वल्ली-सत्फलं चित्स्वरूपं। सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत कृष्णनाम।" अर्थात् श्रीकृष्णनाम मधुरादपि मधुर एवं निखिल मंगल का मंगलस्वरूप है। सकल वेदकल्पलता का नित्य और स्वप्रकाश फल स्वरूप है। वृक्ष और लता की लकड़ी और छाल को चबाने से जिस प्रकार कोई आस्वादन प्राप्त नही होता है, केवल फल मे ही आस्वादन है उसी प्रकार वेदकल्पलता के कर्म, ज्ञानादि लकड़ी और छाल के समान है उनके आस्वादन में कोई लाभ नहीं है। श्रीकृष्णनाम रूप-सुपरिपक्व-फलास्वादन में ही कृतार्थता लाभ होती है। यह कृष्णनाम यदि कोई श्रद्धा या अवज्ञा अवहेलना के साथ ग्रहण करे, श्रीनाम अवश्य ही उसको मायावन्धन से छुटकारा दिलाकर उसे दास्यदान करता है। श्री विष्णुधर्म में भी वर्णित है—

" ऋग्वेदो हि यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथवर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥"

जो "हरि" इन अक्षरद्वय का उच्चारण करते हैं, वे

Scanned with CamScanner

ऋक; साम, यजु और अथर्व इन चारों वेदों का अध्ययन कर रहे हैं।" स्कन्द पुराण में श्रीपार्वतीदेवी की उक्ति से भी देखा जाता है–

" मा ऋचो मा यजुस्तात मा साम पठ किञ्चन।
गोविन्देति हरेर्नाम गेयं गायस्व नित्यश: ॥"

"हे वत्स! तुम ऋक, यजु और सामवेद – इनका कोई शास्त्र अध्ययन न कर निरन्तर एकमात्र कीर्तनीय "श्री गोविन्द" यह हरिनाम कीर्तन करो।" पद्मपुराण में श्रीरामचन्द्र के अष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र में है-विष्णोरकैक नामापि सर्व्ववेदाधिकं-मतम्" अर्थात् श्रीविष्णु का एक एक नाम निखिल वेद अपेक्षा अधिक" इन सब वाक्यों से भी यही जाना जाता है कि श्रीहरि का नाम निखिल वेद सार है।

(६) अश्रद्धालु को नामोपदेश— श्रद्धाहीन व्यक्ति जो नाम को सुनने का अनिच्छुक हो, उसको उपदेश करने से अपराध होगा— इस वाक्य से उपदेष्टा का अपराध-प्रदर्शित होता है। यह अवज्ञा आदि अपराध नामोपदेशक का स्पर्श करेगा। श्रीकृष्ण नाम ही जीव का सर्वस्वधन है, यह धन विद्वेषी, विषयविष्ठाभोजी शूकर को देने से वे इस रत्न का आदर नहीं करेंगे, वरन् अनादर ही करेंगे। इस प्रकार नाम ग्रहण कारी स्वयं भी मरेगा एवं प्रदानकारी गुरु को भी मारेगा। इसलिए श्रद्धा-रहित व्यक्ति को नामोपदेश शास्त्र मे

Scanned with CamScanner

निषिद्ध है।

(१०) नाम माहात्म्य श्रवण करके भी नाम मे अप्रीति— इस वाक्य मे उपदेश्य पुरुष के अपराध की बात कही गई है। कारण इस प्रकार का व्यक्ति देह-दैहिकादि जड़ पदार्थ मे मैं और मेरा इस अभिमान के प्राबल्य से विषय भोग की मत्तता से नाम मे प्रीतियुक्त नहीं होता है इसलिए नामापराधी है। कारण उसके द्वारा नाम के प्रति अवज्ञा ही प्रकाशित होती है। इसलिए इस प्रकार के व्यक्ति को नामोपदेश करना कर्त्तव्य नही है। इस विषय में शास्त्रवाणी यथा—

" नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा,
शुद्ध वाशुद्धवर्ण व्यरहितरहितं तारयत्येव सत्यम्।
तच्चेद्देह द्रविण जनता-लोभ-पाषन्डमध्ये,
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र॥"

अर्थात "एक श्रीहरिनाम जिसकी रसना पर या कर्णमूल या स्मृति पथ पर उदित हो, वह शुद्धवर्ण या अशुद्धवर्ण या वर्णादि के व्यवहित या अव्यबहित (जिस प्रकार 'राम' शव्द व्यवहित और 'राजमहल' असमें 'राम' शव्द अव्यवहित) होकर भी उसको त्राण कर देता है। किन्तु यदि वह नाम देह, धन, जनता, लोभ एवं पाषण्ड के वीच में निक्षिप्त हो, तो शीघ्र फल जनक नही होता है।" तात्पर्य यह है कि जिसका देहसुख के प्रति अभिनिवेश है, धन के प्रति आसक्ति है, जनबल, वुद्धि

Scanned with CamScanner

के गौरव हेतु अभिमानी है, जो लोभी और जो वेदविरोधी पाषण्ड मत पोषण करे- उसको शीघ्र हरिनाम का फल प्राप्त नहीं होता है। साधु महत के संग और कृपा के फल से उनकी वह जड़ासक्ति, अभिमान एवं पाषण्ड मत विदूरित होकर वे क्रमशः हरिनाम का फललाभ कर धन्य हो सकते हैं, इसे छोड़कर जो वैष्णव नाम-संकीर्तन त्याग कर प्राकृत नायक-नायिकादि-घटित अभिनय आदि दर्शन कर अथवा नामग्रहण-अपेक्षा विषयभोग से प्रीति के आधिक्य हेतु विषय कार्य से ही इतस्ततः परिभ्रमण करता है वह भी नामापराधी है।

पद्मपुराण वैशाख माहात्म्य में फिर अपराधान्तर वर्णित है—

"अवमन्य प्रयान्ति ये भगवत्कीर्तनं नराः।
ते यान्ति नरकं घोरं तेन पापेन कर्मणा॥"

"जो भगवत् कीर्तन की अवज्ञा कर चला जाता है, वह उस पापकर्म के लिए घोर-नरक में प्रवेश करता है।" इन सब अपराधों का एकमात्र प्रायश्चित पद्मपुराण मे ही उल्लिखित है—

"नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च॥"

अर्थात् नामापराधीगण के पक्ष मे श्रीहरिनाम ही अपराध का एकमात्र प्रयश्चित है। निरन्तर-उच्चारित श्री हरिनाम ही अपराध का नाशक एवं प्रयोजन-साधक हो जाता

Scanned with CamScanner

है।" महत के निकट अपराध होने से जिन महत के निकट अपराध हुआ है उनके प्रसन्न होकर क्षमा करने से वह अपराध नष्ट हो जाता है। यदि किसी प्रकार भी उनकी प्रसन्नता अर्जन या कृपालाभ न पाया जा सके तो निर्विवर्ण होकर निरन्तर कीर्तन से इस अपराध का उपशम होगा। अगर कोई मानता है कि यदि अविश्रान्त नामकीर्तन से ही सब अपराध नाश प्राप्त होंगे तव उन महत् के निकट इतने अनुरोध की क्या आवश्यकता है? तब तो फिर नाम के बल से पापाचरण में प्रवृत्तिरूप अपराधान्तर का उद्‌गम होगा। श्रीमन्नारायण ने भी श्री अम्बरीष महाराज के निकट अपराधी श्री दुर्वासा ऋषि को अम्बरीष के निकट भेजा और उनसे क्षमा-भिक्षा द्वारा अपराध का अपगम कराया था। निष्कपट रूप से अपराध व्यक्त कर दैन्य-विनय के साथ क्षमा-प्रार्थना करने से कृपामय वैष्णव अवश्य क्षमा कर देंगें। कलियुग पावनावतार श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनाम कीर्तनकारी के निखिल अपराध के मूलोच्छेद कर श्रीरामानन्द राय के निकट कहा था—

" ये रूप लइले नाम प्रेम उपजाय।
तार लक्षण शुन स्वरूपरामराय॥"
"तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥"

Scanned with CamScanner

प्रभु ने स्वयं ही इस श्लोक की व्याख्या भी की है—

" उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम॥
वृक्ष येन काटिलेह किछु न बोलय।
शुकाइया मैले कारे पानी ना मागय॥
येइ ये मागये तारे देय आपनधन।
घर्म्म-वृष्टि सहे अन्येर करये रक्षण॥
उत्तम हञा वैष्णव हवे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिवे जानि कृष्ण-अधिष्ठान॥
एइमत हञा येइ कृष्ण नाम लय।
कृष्णेर चरणे तारे प्रेम उपजय॥"

(चै: च: २० परि:)

श्रीरूपकीर्तन यथा —"प्रत्याकृष्टुं नयनमवला इत्यादौ यछ्रीवाचां जनयति रतिंकिं नु मानं कवीनां (भा: १०/३०/४)

अर्थात जिन रमणीगण के श्रीकृष्ण के रूप मे नयन लगे वे फिर श्रीकृष्ण से अपनी आँख हटाने मे समर्थ नहीं हुई, जिस श्रीकृष्ण रूप की बात कर्णरन्ध्र द्वारा हृदय में प्रविष्ट होने से सज्जनगण के हृदय मे चित्र के समान अंकित हो जाता है और हृदय से फिर बाहर नही होता है। श्रीकृष्ण रूप की शोभा सम्पद साधुगण द्वारा कीर्तित होने से उनकी वागेन्द्रिय की रति या राग उत्पन्न करती रहती है, युद्ध मे अर्जुन के रथ पर सारथी

Scanned with CamScanner

रूप में श्रीकृष्ण के उस रूप दर्शन से असुरगण ने सारूप्य मुक्ति लाभ की थी। सनकादि ऋषिगण ने भी श्रीमन्नारायण की स्तुति प्रसंग मे कहा है —

" कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः
स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः
पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः॥"

(भाः ३/१५/४६)

"हे भगवन्! यदि हमारा चित्त भौरें की तरह आपके चरण कमलों में ही रमण करता रहे हमारी वाणी तुलसी के समान आपके चरण-सम्बन्ध से ही सुशोभित हो और हमारे कान आपकी सुयश सुधा से परिपूर्ण रहें तो अपने पापों के कारण भले ही हमारा जन्म नरक आदि योनियों मे हो जाय- इसकी हमे कोई चिन्ता नही है।" श्रीभगवान के गुण श्रवण से भक्त के कानों की पूर्ति कभी नही होती है। तब तो नित्य ही श्रवणसिद्ध होंगे, इस अभिप्राय से ही ऋषि गण भंगीक्रम से अपने कर्णरन्ध्र पूर्ति की प्रार्थना ज्ञापन कर रहे हैं।

गुणकीर्तन—देवर्षि नारद श्रीकृष्ण के गुणवर्णन की प्रेरणा देते हुये श्री व्यासदेव के प्रति कह रहे हैं—

"इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।

Scanned with CamScanner

अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥"

(भाः १/५/२२)

"हे मुनीद्र! मानव की भगवदर्पित तपस्या का, वेदाध्ययन का, यज्ञादि सदनुष्ठान का, मन्त्रादि जप का, शास्त्रीय ज्ञान का, सत्पात्र को दान का, उत्तमश्लोक कृष्ण की गुणावली का नियत कीर्तन ही नित्य फल है। इन समस्त साधन का साध्य भगवदगुणानुवर्णन है—वही गुणानुवर्णन करते करते ही परम पुरुषार्थ रति के उदय होने से नित्य नित्य गुणानुवर्णन का उल्लास प्रकाशित होता है, तभी इसको अविच्युत पुरुषार्थ कहा गया है। अतएव अविच्युत-विशेषण द्वारा भगवतरति जो गुणानुवर्णन का फल है इसकी सूचना की गई।"

लीला कीर्तन—महाराज परीक्षित ने श्री शुकमुनि के प्रति कहा है—

"श्रृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
नातिदीर्घेण कालेन भगवान् विशते हृदि॥"

(भाः २/८/४)

"हे मुने! जो श्रद्धा के सहित भगवान् श्री हरि के लीला समूह श्रवण और कीर्तन करते रहते है भगवान् स्वल्प काल मे ही उसके हृदय मे प्रवेश करते है अर्थात् शीघ्र ही उसके हृदय में स्फुरित हो जाते है।" श्रीभागवत के अन्त में श्री सूतमुनि ने

Scanned with CamScanner

श्री शौनकादि मुनिगण के प्रति कहा है–

"मृषा गिरस्ता ह्यसतीर सत्कथा, न कथ्यते यद भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यां तदुहैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवदगुणोदयम्॥"

इत्यादि,

यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते–इत्यन्तम्॥

(भाः १२/१२/४६)

अर्थात "जिससे भगवान अधोक्षज कीर्तित न हो, उस प्रकार की असत्कथा–युक्त मिथ्यावाक्यावली असत होती है परन्तु भगवत्गुण कथा ही सत्य, मंगलस्वरूप और पुण्यमय इत्यादि से – उत्तमश्लोक के जो यशः अनुक्षण गाये जाते हैं, वही सत्य है – यहाँ तक।" तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान, भक्ति और भक्त भिन्न अन्य असत्कथा जिसमें है, वह सब असती या मिथ्यालाप मात्र, वह सब कथा कहना अनुचित है। कारण यह है कि उससे श्रीभगवान् अधोक्षज कीर्तित नही होते हैं। श्रीभगवान की कथा ही सत्य और मंगल स्वरूप है, कारण यह है वह लीलाकथा गान करने से गायक के हृदय में श्रीभगवान के भक्त वात्सल्य, कारुण्यादि गुण की स्फूर्ति होती है एवं भगवत चरणारविन्द में रतिलाभ हो जाती है। स्कन्द पुराण मे भी वर्णित है–

"यत्र यत्र महीपाल वैष्णवी वर्त्तते कथा।
तत्र तत्र हरिर्याति गौर्यथा सुवत्सला॥"

Scanned with CamScanner

"हे राजन्! जिस जिस स्थान पर श्रीहरिकथा प्रवर्तित होती है, सन्तानवत्सला धेनु जिस प्रकार वात्सल्य से आप्लुत होकर तेजी से वत्स के निकट जाती है, उसी प्रकार श्रीभगवान् उस उस स्थान पर गमन करते हैं।" श्रीविष्णुधर्म और स्कन्दपुराण में श्रीभगवान् श्रीमुख से कहते है—

"मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम्।
मत्कथाप्रीतिमनसं नाहं त्यक्षामि तं नरम्॥"

"जो जन मेरी कथा सर्वदा कीर्तन करते, मेरी कथा श्रवण से जो आसक्त एवं मेरी कथा से जो सन्तुष्ट चित्त मैं उसको कभी त्याग नहीं करता हूँ।" मूल श्लोक में यदुत्तमः श्लोक यशो अनुगीयते इसमें जो "अनुगीयते" पद है इसके द्वारा सूचित हुआ है कि यदि सुकन्ठ है, तव लीलागान करना ही कर्त्तव्य है गान ही श्रवण कीर्त्तन अपेक्षा प्रशस्त है। जिस कारण एक तो मधुमयी भगवल्लीला, फिर सुकन्ठ से उसे कीर्तन करने से गायक और श्रोता सव का हृदय लीला रस से आप्लुत होता है। इस प्रकार नाम-रूपादि के भी श्रवण कीर्तन से गान ही प्रशस्त रूप से उपलब्ध है। श्री कवि योगीन्द्र ने महाराज निमि के प्रति कहा है—"गीतानि नामानि तदर्थकानि, गायन विलज्जो विचरेद संगः" अर्थात् लज्जा त्याग या लोकापेक्षा त्याग कर तद्विषयक गीत और नामसमूह गान करते करते एकाकी-विचरण करेंगे।" गान की शक्ति न रहने से अपने से

Scanned with CamScanner

उत्कृष्ट गायक पाने से उसके पास गान श्रवण करेंगे। गान मे आसक्ति न रहने से उसका अनुमोदन करने से भी भक्तिलाभ होगी। श्री विष्णुधर्म में श्री विष्णु की उक्ति में पाया जाता है–

" रागेणाकृष्यते चेतो गान्धर्व्वाभिमुखं यदि।
मयि वुद्धि समास्थाय गायेथा मम सत्कथा:॥"

अर्थात् गान विद्या से अभिमुख- चित्त यदि (भैरवादि) राग से आकृष्ट हो, तव मुझ मे वुद्धि--सन्निवेश पूर्वक मेरी लीला का गान करो। "मयि बुद्धि समास्थाय" इस बात का तात्पर्य यह है कि लीलागायकगण मे प्राय: अनेक का अपने यश-प्रतिष्ठा आदि अर्जन की ओर लक्ष्य रहता है, उससे श्रीहरि को सन्तोष नही होता है और अपने को भी लीलारस का आस्वादन-लाभ नही होता है। गायक यदि मानता है– 'आहा! इस गान से मेरे प्रभु कितना आनन्द पा रहे है' तभी गान की यथार्थ सार्थकता है। कारण श्रीहरि ने स्वयं ही पद्मपुराण कार्तिक माहात्म्य मे कहा है–

" नाहं वसामि वैकुन्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥"

"हे नारद! मैं वैकुन्ठ या योगीगण के हृदय मे वास नहीं करता हूँ, मेरे भक्तगण जहाँ मेरी कथा का गान करते हैं, मैं वहाँ पर ही अवस्थान करता हूँ।" और भी कहा है–

Scanned with CamScanner

" तेषां पूजादिकं गन्धपूजाद्यैः क्रियते नरैः।
तेन प्रीतिं परां यामि न तथा मम पूजनात्॥"

"उन सब भक्तों की जो गन्ध-पुष्प-धूपादि द्वारा पूजा करते हैं, उनके प्रति मैं जितना सन्तुष्ट हूँ—अपनी (स्वयं की) पूजा से उतना सन्तुष्ट नही होता हूँ।" जो भगवल्लीलागान करते हैं, वे प्राणीमात्र का ही परम उपकार साधन करते हैं। कारण उच्चस्वर से कीर्तन करने से दूरस्थ प्राणी भी सुन पाते हैं, जो स्थावर (वृक्ष, लता, तृणादि) उनमे श्रीहरिकीर्तन की प्रतिध्वनि होने से उनका भी कल्याण साधित होता है। अपना जो परम-कल्याण-साधित होता है, उसके बारे मे तो कहना ही क्या? श्रीप्रह्लाद महाशय ने श्री नृसिंहदेव के प्रति कहा है—

" ते सन्तः सर्व्वभूतानां निरुपाधिक वान्धवाः।
ये नृसिंह भवन्नाम गायन्त्यच्चैर्मुदान्विताः॥"

(श्री नृसिंहपुराण)

"हे नृसिंहदेव! वे सव साधु सर्वप्राणियों के निरुपाधिक वान्धव है जो परमानन्द से उच्चस्वर मे आपका नाम गान करते हैं।" "अत्र च वहुभिर्मिलित्वा कीर्त्तनं संकीर्तन-मित्युच्यते। तन्तु चमत्कार-विशेष पोषात् पूर्व्व तोऽप्य धिकमिति ज्ञेयम्।" (भः सः -२६६ अनुः) इस कीर्तनाङ्ग मे बहुजन मिलकर जो कीर्तन करे उसको संकीर्तन कहा जाता है, यह संकीर्तन विशेष चमत्कारिता के पोषण के कारण गान से अधिक माहात्म्य और

Scanned with CamScanner

माधुर्यपूर्ण होता है।

इयञ्च कीर्त्तनाख्या भक्तिर्भगवतो द्रव्यजातिगुण क्रियाभिर्दीन जनैकविषया पारकरुणमयीति श्रुतिपुराणादि-विश्रुतिः।" (भः सः २६० अनुः) अर्थात् जो द्रव्य, जाति, गुण एवं क्रिया विषय में दीन है अर्थात् जिनका उत्तम द्रव्य, जाति, गुण एवं क्रियादि कुछ नहीं है, श्रीभगवान उनके एकमात्र विषय रूप मे अपार करुणारूपिणी इस कीर्तनाख्या भक्ति का विधान करते है, यह श्रुति-पुराणादि मे प्रसिद्ध रहा है। व्रह्मवैवर्तपुराण मे देखा जाता है कलियुग के सब मानवो का ही यह दीनत्व है यथा—

" अतः कलौ तपो योगविद्याः यज्ञादिकाः क्रियाः।
साङ्गा भवन्ति न कृताः कुशलैरपि देहिभिः॥"

अतएव तपस्या, योग, ज्ञान, यज्ञादि क्रियासमूह कलियुग मे सुनिपुण मानवगण द्वारा आचरित होकर भी इन सब अंगो की पूर्णता प्राप्त नही होती है।" अतएव कलियुग में स्वभाव से ही अति दीनजनगण के मध्य आविर्भूता होकर यह कीर्तनाख्या भक्ति अनायास ही उनके अन्यान्य युगगत महासाधना समूह के समस्त फल ही प्रदान कर कृतार्थ करती है। इस कारण इस कीर्तनांग भक्ति द्वारा ही कलियुग मे श्रीभगवान को विशेष सन्तोष प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण चातुर्मास्य- माहात्म्य मे अनुरूप उक्ति देखी जाती है—

Scanned with CamScanner

"तथा चैवोत्तमं लोके तपः श्रीहरिकीर्तनम्।
कलौ युगे विशेषेण विष्णु प्रीत्ये समाचरेत्॥"

"श्रीहरिकीर्तन ही संसार मे उस प्रकार उत्तम तप के समान है, कलियुग मे श्रीविष्णु की प्रीति के निमित्त विशेष भाव से उसका ही अनुष्ठान करना चाहिए।" तभी श्रीमद्भागवत कहती है—

"कृते यद ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात्॥" (भाः १२/३/५६)

"सत्ययुग में श्रीविष्णु का ध्यान करने से, त्रेतायुग मे यज्ञ-अनुष्ठान करने से, द्वापरयुग में श्रीभगवान की परिचर्या करने से जो फल लाभ होता हे, कलियुग में श्री हरि-कीर्तन के द्वारा ही मानवगण वे समस्त फल लाभ करते है।" अतएव श्री योगीन्द्र ने महाराज निमि के प्रति कहा है—

" कलिंसभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥"

(भाः ११/५/३६)

"हे राजन्! जिसमें संकीर्त्तन द्वारा ही निखिल स्वार्थ सम्यकरूप से लव्ध होते है उस कलियुग का गुणज्ञ-सारग्राही आर्यगण विशेष सम्मान करते है।" इस श्लोक में 'गुणज्ञ' कहने का अभिप्राय यह है कि कलियुग के कीर्तन प्रचार रूप गुण जो जानते है, कलियुग के दोषमात्र ही जो न ग्रहण करे

Scanned with CamScanner

वही सारमात्र-ग्राही पुरुषगण कलियुग का सम्मान करते हैं। जिस कलियुग में प्रचारित साधनान्तर निरपेक्ष एकमात्र संकीर्तन-द्वारा ही सत्यादि युग में ध्यानादि विभिन्न साधन द्वारा साध्य सब ही लव्ध हो जाते हैं। इसीलिए श्रील करभाजन ऋषि कलियुग में कीर्तन की महिमा घोषणा कर रहे हैं-

"न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः॥"
(भाः ११/५/३६)

"इस अति दुर्गम संसार-मरुपथ मे भ्रमणशील मानवगण का इस कीर्तन अपेक्षा दूसरा कोई परम लाभ नही। कारण इसके द्वारा ही संसारी मानवकुल परम शान्तिलाभ करता है एवं आनुषंगिक भाव से संसार क्लेश-नाश प्राप्त होता है।" श्रीभगवान् ने श्रीउद्धव से कहा है-"शमो मन्निष्ठता-वुद्धेः" हे उद्धव! मुझ मे निष्ठाप्राप्त बुद्धि का नाम शम या शान्ति है। कीर्तन के द्वारा ध्यानादि साधना के असाध्य यह भगवन्निष्ठा लाभ की जाती है। यह संकीर्तन केवल कलियुग में प्रचारित होने के कारण ध्यान मे निष्ठा प्राप्त सत्ययुग के मानवगण को इस प्रकार की भगवन्निष्ठा प्राप्त नही होती है। "महाभागवता नित्य कलौ कुर्व्वन्ति कीर्त्तनम्।" इस स्कन्दपुराण के वाक्य के अनुसार जाना जाता है कि श्री भगवतच्चरण मे उस प्रकार परमोत्कृष्ट निष्ठालाभ का कारण संकीर्तन-माहात्म्य दीनजन

Scanned with CamScanner

के प्रति कृपालु श्री भगवान ध्यान, यज्ञ इत्यादि अतीव कष्ट-साधन मे समर्थ सत्य, त्रेतादि युग के मानवगण के निकट प्रकाश नहीं करते हैं। इसलिए उस युग के ध्यानादि साधन-शक्ति-सम्पन्न मानवगण जिह्वा और होठ के स्पन्दनमात्र से ही जो साधन- सम्पन्न होता है वह इतना श्रेष्ठ होगा इसका विश्वास ही नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उनकी कठोर साधनशक्ति इस अति अनायास साध्य कीर्तन मात्र में विश्वास-स्थापन नहीं करने देती है। इसलिए सत्यादि युग की प्रजागण कलियुग के मानवगण की कीर्तन द्वारा इस प्रकार की परम भगवनिष्ठा-प्राप्ति की बात सुनकर कलियुग मे जन्मग्रहण की प्रार्थना करते रहते हैं।

"कृतादिषु प्रजा राजन् फलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणा:॥"

(भा: ११/५/३८)

"हे राजन! सत्यादियुग के प्रजागण कलियुग मे जन्मग्रहण की इच्छा करते रहते हैं, कारण कलियुग के मानवगण नारायण परायण होंगे।" इस श्लोक मे नारायण-परायणत्व कहने से श्रीनारायण ही है परम अयन या आश्रय जिसके, अर्थात श्री भगवान मे प्रेमातिशयवत्व ही समझा जाता है। अतएव श्रीभगवान मे जो प्रेमातिशय्य ही पूर्वश्लोक की परमाशान्ति वह कार्य द्वारा व्यञ्जित हुआ। श्रीनारायण-परायण ही जो

Scanned with CamScanner

प्रशान्तचित्त वह (भा: ६/१४/५)—श्लोक मे स्पष्ट भाव से उल्लेख किया गया है—

" मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायण:।
सुदुर्लभ: प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥"

"अर्थात करोड़ों मुक्त-सिद्धपुरुषगण के मध्य मे भी प्रशान्त चित्र नारायण-परायण पुरुष अति सुदुर्लभ है।" यहाँ पर उल्लेख योग्य यह है कि कलि-सम्बन्ध से ही जो कीर्तन का गुणोत्कर्ष है ऐसा नहीं है, क्योंकि भक्ति के अंग मात्र से ही काल और देश का कोई नियम नही है। चिन्मयी भक्ति साधना अतीव व्यापक है इसलिए कर्म, ज्ञानादि के समान देश, काल, पात्रविशेष के संकीर्ण सीमा के मध्य में आवद्ध नही है। विशेषत: श्रीनाम को लक्ष्य कर श्रीविष्णुधर्म मे क्षत्रवन्धु-उपाख्यान मे कहा है—

" ने देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा।
नोच्छिष्टादौ निषेधश्च हरेर्नाम्नि लुव्धक॥"

"हे व्याध! श्रीहरिनाम-कीर्तनादि के विषय मे देश काल का कोई नियम नही है। यहाँ तक कि उच्छिष्ट आदि अवस्था मे भी नामकीर्तन का निषेध नहीं है।" स्कन्दपुराण, पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य एवं विष्णुधर्म मे भी उल्लेख है—"चक्रा युधस्य नामानि सदासर्व्वत्र कीर्त्तयेत" इति अर्थात् "चक्रधारी श्रीहरि का नाम सर्वदेश सर्वकाल कीर्तन करना

Scanned with CamScanner

आवश्यक है।" स्कन्दपुराण मे वर्णित है -

"न देश कालावस्थात्मशुद्धयादिकमपेक्ष्यते।
किन्तु स्वतन्त्रमेवैतन्नामकामितकामदम्॥"

श्रीहरिनाम मे देश, काल, अवस्था अथवा चित्तशुद्धि आदि की कोई अपेक्षा नहीं हैं, वे परम स्वतन्त्र सब के सर्ववाञ्छित प्रदाता हैं।" किसी के मन मे इस प्रकार मानना ठीक नहीं कि कलियुग के मानव की अन्य साधना की सामर्थ्य नही होने से नामकीर्तनरूप अल्प आयास-साध्य साधन से ही महान फल हो जाता है, वस्तुतः नाम कीर्तन का इस प्रकार का गुरूत्व नही है। विष्णुपुराण मे वर्णन है—

"यस्मिन्न्यस्त मतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने,
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसां व्राक्षोऽपि लोकोल्पकः।
मुक्तिं चेतसियः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यवयः,
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते॥"

जिन श्रीकृष्ण मे मति निविष्ट करने से मानव नरकगामी नही होता है, जिसकी चिन्ता से स्वर्गसुख भी विघ्नरूप से अनुभव होता है, जिनमे मन निविष्ट होने से सत्यलोक भी अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है, निर्मलवुद्धि मानवगण के चित्त मे अवस्थान करने से जो मुक्तिदान करते है, उन अच्युत का कीर्तन करने से पापराशि नष्ट होगी-इसमे आश्चर्य क्या है? इस वाक्य से स्मरण से समाधि पर्यन्त और कितना अधिक

Scanned with CamScanner

मत से विष्णुपुराण मे कीर्तन का ही श्रेष्ठत्व दिखाया गया है। अतएव श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ से श्रीपाद शुकदेवमुनि ने "एतन्निविर्वद्यमानानाम् इत्यादि (भा: २/१/११) श्लोक मे विषयी, मुमुक्ष यहाँ तक मुक्तपुरुषगण के पक्ष मे भी श्रीहरिनाम-कीर्तन को ही अकुतो भय कहकर निर्देश किया है। श्रीवैष्णवचिन्तामणि मे भी वर्णन है—

अघच्छित् स्मरणं विष्णोर्वहान्यासेन साध्यते।
ओष्ठस्पन्दन मात्रेण कीर्त्तनन्तु ततो वरम्॥

अर्थात् "अघारि श्रीकृष्ण का स्मरण वहु आयास साध्य कारण मानव का विषय विक्षिप्त चित्त श्रीकृष्ण मे निविष्ट करना कठिन है। किन्तु ओष्ठ स्पन्दनमात्र से ही साध्य कीर्तन स्मरण से श्रेष्ठ है।" फिर अन्यत्र भी उल्लेख है, जिन्होंने पिछले सैकड़ो जन्मों मे श्रीवासुदेव की अर्चना की है, उनके मुख मे ही सदैव श्रीहरिनाम विराज करते है। यथा—

"येन जन्मशतै: पूर्व्वं वासुदेव-समर्च्चित:।
तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारत:॥"

अतएव सब युगों मे ही कीर्तन का समान सामर्थ्य है, परन्तु कलियुग में श्रीभगवान कृपापूर्वक जीव को उसे (श्रीनाम कीर्तन) ग्रहण करवाते हैं, इसलिए ही कलियुग मे श्रीनाम-कीर्तन की इतनी प्रशंसा सुनी जाती है। अतएव कलियुग मे यदि अन्य भजनांग का अनुष्ठान भी करना है, तो इसे भी श्रीनाम

Scanned with CamScanner

कीर्तन के सहयोग से ही करना होगा। इस अभिप्राय से ही श्रीपाद करभाजन ऋषि ने महाराज निमि के निकट कहा है – "यज्ञैः संकीर्त्तन प्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस:" "जो सुमेधा है, वे संकीर्तन-प्रधान यज्ञ से श्रीहरि की आराधना करते हैं।" "संकीर्तन यज्ञे करे कृष्ण आराधन। सेइ त सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥" (चै: च:) इस विशेष कलि मे श्रीगौरांग महाप्रभु ने अवतीर्ण होकर कलिमानव को नाम-संकीर्तन लिवाया है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद् ने इसका श्री चैतन्यचरितामृत मे उल्लेख किया है—

"फाल्गुन-पूर्णिमा-सन्ध्याय प्रभुर जन्मोदय।
सेइकाले दैवयोगे चन्द्रग्रहण हय॥
'हरि हरि' बोले लोक हरषित हञा।
जन्मिला चैतन्यप्रभु नाम-जन्माइया॥
जन्म, वाल्य, पौगण्ड कैशोर, युवाकाले।
हरिनाम लओयाइला प्रभु नाना-छले॥
वाल्याभावछले प्रभु करेन क्रन्दन।
कृष्ण, हरिनाम शुनि रहये रोदन॥
अतएव 'हरि हरि' वोले नारीगण।
देखिते आसे येवा सव वन्धुजन॥
विवाह करिले हैल नवीन यौवन।
सर्वत्र लओयाइल प्रभु नाम-संकीर्त्तन॥

Scanned with CamScanner

पौगण्ड-वयसे पढेन, पढान शिष्यगणे।
सर्वत्र करेन कृष्णनामेर व्याख्याने॥
सूत्र-वृत्ति-पाँजि-टीका-कृष्णेते तात्पर्य।
शिष्येर प्रतीत हय प्रभाव आश्चर्य॥
यारे देखे तारे कहे—कह कृष्णनाम।
कृष्ण नामे भासाइल नवद्वीप ग्राम॥
कैशोर वयसे आरम्भिला संकीर्तन।
रात्रिदिने प्रेमे नृत्य- संगे भक्तगण॥
नगरे नगरे भ्रमे कीर्त्तन करिया।
भासाइल त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया॥
चव्विस-वत्सर ऐछे नवद्वीप ग्रामे।
लओयाइला सर्वलोके कृष्णप्रेम नामे॥
चव्विश वत्सर छिला करिया सन्यास।
भक्तगण-लञा कैला नीलाचले वास॥
तार मध्ये नीलाचले छय वत्सर।
नृत्यगीत प्रेमभक्ति-दान निरन्तर॥
सेतुवन्ध आर गौड़ व्यापि वृन्दावन।
प्रेमनाम प्रचारिया करिला भ्रमण॥"

(चै: च: आदि १३ वॉ परि:)

विश्व मे किसी युग मे इस प्रकार व्रजप्रेमसाध्य नाम-संकीर्तन प्रचार का प्रत्यक्ष दृष्टान्त नही मिलता। तभी

Scanned with CamScanner

श्रील कविराज गोस्वामिपाद ने श्रील करभाजन ऋषि की उक्ति के साथ समस्वर मे कहा है –

" संकीर्तन-प्रवर्त्तक श्रीकृष्णचैतन्य।
संकीर्त्तन-यज्ञे ताँरे भजे सेइ धन्य॥
सेइ त सुमेधा आर कुवुद्धि संसार।
सर्व्वयज्ञ हैते कृष्णनामयज्ञ सार॥"

(चै: च: आदि ३य परि:)

अतएव इस कीर्तनांग मे नामसंकीर्तन स्वतन्त्रभाव से ही अति प्रशस्त अर्थात् महामहिमायुक्त है। तभी श्रीनारदीय पुराण में वर्णित है –

" हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥"

श्रीमन्महाप्रभु ने इस श्लोक की व्याख्या मे कहा है–

कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार।
नाम हैते हय सर्व्व जगत निस्तार॥
दार्ढ्य लागि हरेर्नाम उक्ति तिनवार।
जड़ लोके वुझाइते पुनरेव-कार॥
'केवल' शव्द पुनरपि निश्चय कारण।
ज्ञान-योग-तप-कर्म्म आदि निवारण॥

अन्यथा ये माने, तार नाहिक निस्तार।
'नाहि नाहि नाहि' एइ तिन एवकार॥
(चैः चः आदि १६ परिः)

"तदेवं कलौ नामकीर्त्तन प्रचार- प्रभावेनैव परम भगवत् परायणत्व-सिद्धिदर्शिता" (भः सः २६४ अनुः) अतएव कलियुग में नाम कीर्तन प्रचार के प्रभाव से ही परम-भगवत्-परायणत्व-सिद्धि दर्शित हुई।" अर्थात इसके पहले जो श्रीकरभाजन ऋषि की श्रीनिमि के प्रति उक्ति-"कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण-परायणाः" 'कलियुग का मानव नारायण परायण होगा' इस वाक्य से श्रीनामकीर्तन-प्रचार-प्रभाव ही सिद्ध हुआ है। अर्थात् सर्वत्र श्रीहरिनाम-कीर्तन प्रचार होने से कलियुग के मानवगण नारायण-परायण हो रहे हैं। इस कीर्तनांग-भक्तिविषय मे और भी ज्ञातव्य यह है कि श्रीमद्भागवत मे वर्णित श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और परिकरादि कीर्तन अन्य पुराणादि मे वर्णित श्रीहरि के नामरूप आदि अपेक्षा प्रशस्त (महामहिमा युक्त) समझना होगा। इस कलियुग मे श्रीमद्भागवत कीर्तन ही सर्वप्रकार श्रवण-कीर्तन-अपेक्षा श्रेष्ठ है। श्रीमन्महाप्रभु और उनके चरणाश्रित श्रीरूप-सनातन-श्रीजीवादि आचार्यपादगण के मत से श्रीमद्भागवत ही अमल प्रमाण है। उन्होंने वेद-वेदान्त और अन्यान्य पुराणादि को यथोपयुक्त मर्यादा-दान करके भी उनके निकट निगम-कल्पतरु

Scanned with CamScanner

के गलित फल श्रीमद्भागवत का स्थान सर्वोच्च है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्धानके बाद श्रीकृष्णके प्रतिनिधिरूप मे यह श्रीमद्भागवत ही विराजमान रही है। आध्यात्मिक पुरुष के तीन नेत्र-प्रथम उपनिषद,द्वितीय गीता, तृतीय श्री मद्भागवत। उपनिषद का युग अनेक दिन से अतिक्रान्त हो चुका है, गीता का युग भी लगभग गया हुआ ही जानो, वर्तमान में श्रीमद्भागवत की आलोकराशि ही परमार्थ पथ के पथिकगण को पथ खोजकर गन्तव्य स्थल पर पहुँचाने का एकमात्र अवलम्बन है। श्रीमद्भागवत मे ही देखा जाता है-"कलौ नष्टदृशामेषः पुराणार्कोऽधुनोदितः" दृष्टिहारा कलियुग के मानवगण के भाग्य से पुराणसूर्य श्रीमद्भागवत का उदय हुआ है।

कीर्तनाङ्ग भक्तिकी व्याख्या हुई। अपनी अभीष्ट सदैन्य विज्ञप्ति और स्तवपाठ आदि भी इसी के अन्तर्गत जानना चाहिए। श्रीकृष्ण के निकट विशेषभाव से हृदय के भाव-निवेदन और प्रार्थना को ही विज्ञप्ति कहा जाता है। भक्त की सदैन्य प्रार्थना एवं व्याकुलता पूर्ण अन्तरका भाव-निवेदन अभीष्ट की करुणा के अर्गल (अर्गला, रोक) को खोल देता है।

श्रीपद्मपुराण मे लिखा है—

हरिमुद्दिश्य यत्किंञ्चित् कृतं विज्ञापनं गिरा।
मोक्षद्वारार्गलान्मोक्षस्तेनैव विहितं तव॥

Scanned with CamScanner

अर्थात् "श्रीहरि के उद्देश्य से वाक्य द्वारा तुम जो विज्ञापन करते हो, उसी से तुम्हारा मोक्षद्वार उन्मुक्त होता है। संप्रार्थनामयी, दैन्यवोधिका, लालसामयी आदि विज्ञप्ति के विविध भेद देखे जाते हैं। संप्रार्थनामयी यथा-"हे प्रभो! युवतीगण का मन जिस प्रकार युवक के प्रति एवं युवकगण का मन जिस प्रकार युवतीगण के प्रति आसक्त होता है, मेरा मन उसी प्रकार तुम्हारे प्रति आसक्त हो।" कवि श्रीतुलसीदास ने लिखा है– कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि जिम प्रिय दाम, (अर्थसम्पद)। तिमि मम उर निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम।।" (रामचरित मानस) दैन्यवोधिका यथा–'हे पुरुषोत्तम! मेरे समान पापी और अपराधी इस विश्व मे और कोई नहीं है, तुम मेरे दोषों को क्षमा करो यह बात कहते हुए भी मुझे लज्जाबोध हो रहा है।' सब प्रकार के गुणो से अलंकृत होते हुए भी भक्त का इस प्रकार अपने को अपकृष्ट या अधम मानना, यह भक्ति का ही स्वभाव है, इससे कृपामय श्रीहरि का हृदय

Scanned with CamScanner

के विषय में दृढ़ निष्ठा का उद्रेक होता है, सव प्रकार के दोष-क्षमा होते हैं, चित्त सरस होता है और अभीष्ट सेवा लाभ होती है।

स्तवपाठ — श्रीभगवान के सम्मुख स्तवपाठ करना। श्रीमद्भागवत, गीता, एवं गौतमीय-तन्त्र आदि ग्रन्थों मे लिखित स्तव एवं महाजनगण-द्वारा रचित स्तोत्रादि का पाठ और पुनः पुनः आवृत्ति स्तव अैर स्तोत्र मे उद्देश्यगत कोई भेद न रहते हुए भी पुराणादि शास्त्रोक्त-पद्यावली को स्तव एवं महाजन कृत पद्यावली को स्तोत्र कहा जाता हैं। अनुभवी महत्गण द्वारा रचित स्तोत्रपाठ अधिकतर आदर का विषय होते हैं।

(३) **"स्मरण"**—शरणागति इत्यादि के द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होने से नाम कीर्तन परित्याग न कर स्मरण करना कर्त्तव्य है। अशुद्ध चित्त सर्वदा विषयविक्षिप्त रहता है। इस अवस्था में साधक स्मरणांग-भजन की चेष्टा करने पर भी कार्य मे सफल नही हो पायेगें। इसका कारण यह है कि विषय विक्षिप्त-चंचलचित्त श्रीभगवान् की गुणलीला मे निविष्ट नही किया जा सकता है। श्री भगवत्चरण मे शरणागत साधक का चित्त श्रवण-कीर्तनादि द्वारा किञ्चित शुद्ध होते ही वे स्मरणांग भजन का अभ्यास करें। भगवद्विषयक मानस-अनुसन्धान का नाम ही 'स्मरण' है। स्मरण भी नाम, रूप, गुण, लीला

Scanned with CamScanner

गुण, लीला-परिकरादि के श्रवण, कीर्तन और चिन्तन, यह सभी स्मरणांग-भक्ति के परिपोषक हैं। श्रवण-कीर्तनादि भक्ति के सहित स्मरण भी अंगागी-भाव से जड़ित कहे जाने से कब यह कौन सा किस भक्त्यंग के मध्य परिगणित हो जाये, इसकी कोई सीमा रेखा नहीं है। एक अवस्था मे जो नाम श्रवण या कीर्तन का विषयीभूत हुआ वही नाम ही फिर स्मरण के उद्दीपन का कारण हो जाता है। अतएव श्रवण, कीर्तन और स्मरण को परस्पर परिपोषक कहा जाता है या कार्य-कारण के हिसाब से इनका अभेदत्व भी सिद्ध होता है। जो भी हो, सामान्यत: स्मरण की बात श्रीकृष्ण ने उद्धव के प्रति कही है-

"एतावान योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यतेयथा॥"
(भा: ११/१३/१४)

"प्रिय उद्धव! मेरे शिष्य सनकादि परमर्षियो ने योग का यही स्वरूप बताया है कि साधक अपने मन को सब ओर से खींचकर, साक्षात् मुझ मे ही पूर्ण रूप से लगा दे।"

विषयनिष्ठ-मन मे ईश्वर का स्मरण-मनन सम्भव नही है इस कारण बुद्धिपूर्वक मन को विषय से आकर्षण कर ईश्वर के रूप-गुण आदि मे निविष्ट करने के लिए यह बात कही गई है। स्कन्दपुराण में देखा जाता है-

Scanned with CamScanner

"आलोड्य सर्व्वशास्त्राणि विचार्य्य च पुनः पुनः।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥"

व्रह्मा ने श्रीनारद के प्रति कहा—"हे वत्स! समस्त शास्त्र आलोड़न कर एवं पुनः पुनः विचार कर यही सुनिष्पन्न हुआ है कि भगवान् श्रीमन्नारायण ही एकमात्र ध्येय हैं।" नाम-स्मरण यथा—

"हरेर्नाम परं जप्यं ध्येयं ज्ञेयं निरन्तरम्।
कीर्त्तनीयञ्च वहुधा निर्वृतिवहुधेच्छता॥"

(जावाली संहिता)

अर्थात् "जो बहुत प्रकार से आनन्दलाभ करने की इच्छा करते हैं, वे निरन्तर एक ही हरिनाम जप करते हैं, ध्यान करते हैं, गान करते हैं, एवं कीर्तन करते हैं।" जिस प्रकार भोजन-रसिक-व्यक्तिगण षड़रस के विविध व्यंजन मिष्ठान्नादि के सहित भोजन मे आस्वादन-वैचित्री लाभ करते रहते हैं, उसी प्रकार भजनरसिक-नामनिष्ठ-भक्तगण जप, कीर्तन, ध्यान, गान के द्वारा श्रीनाम की आस्वादन वैचित्री मे बहुत प्रकार से आनन्द लाभ करते हैं। नामस्मरण शुद्ध अन्तःकरण की अपेक्षा करता है, अर्थात् चित्तशुद्ध न होने से नाम स्मरण की योग्यता लाभ नहीं होती है। अतएव स्मरण कीर्तन की अपेक्षा शक्ति मे कम है। कारण यह है कि स्मरण चित्तशुद्धि की अपेक्षा रखता है, किन्तु कीर्तन चित्त-शुद्धि की अपेक्षा नहीं करता है। इसलिए स्मरणांग

Scanned with CamScanner

अपेक्षा कीर्तनांग सबल है। मूल मे किन्तु इस विषय मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। अब रूप स्मरणकी बात कह रहे हैं–

"अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥"

(भाः १२/१२/५४)

"श्रीकृष्णपदारविन्द युगल की निरन्तर स्मृति निखिल अमंगल का विनाश कर मंगल विस्तार करती है, चित्तशुद्ध कर श्रीभगवान के चरणों में भक्ति का आविर्भाव कराती है एवं विज्ञान और विरागयुक्त ज्ञान प्रदान करती रहती है।" इस श्लोक में भक्तिपूर्वक ही श्रीकृष्णपदारविन्द युगल की स्मृति यह बात कही गई है, वस्तुतः श्रीकृष्ण के रूप की स्मृति की या रूप स्मरण की बात ही जानना चाहिए। यहाँ पर परमात्मा श्रीकृष्ण में प्रेमलक्षणा-भक्ति-लाभ ही श्रीकृष्ण स्मरण का मुख्य फल एवं अमंगल नाश,मंगलविस्तार, चित्त-शुद्धि, विज्ञान या अनुभूति एवं विषय वैराग्ययुक्त ज्ञान सभी रूप स्मरण के आनुसंगिक फल हैं। इस स्मरणांग भक्ति की महिमा-सम्वन्ध मे श्रीदामविप्र की पत्नी ने उसके प्रति कहा है–

"स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति।
किं न्वर्थकामान भजतो नात्यभीष्टांजगद्गुरुः॥"

(भाः १०/८०/११)

Scanned with CamScanner

जगदगुरु श्रीकृष्ण निज-चरणकमल स्मरणकारी जन के निकट आविर्भूत होकर आत्मदान कर देते हैं अर्थात स्वयं को स्मरणकारी के वशीभूत करते हैं। जिस कारण परिणाम विरस हेतु भक्तगण के अनतिवाँछित धर्म, अर्थ, काम, मुक्ति इस चतुर्वर्ग दान की और बात ही क्या है? इसी प्रकार भगवत्स्मरण के माहात्म्य के बारे मे श्रीगरुड़पुराण मे कहा गया है—

"एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते मुहूर्त्ते ध्यानवर्जिते।
दस्युभिर्मुषितेनेव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम्॥"

यदि एक मुहूर्त्तकाल श्रीहरि के ध्यान शून्य होकर व्यतीत हो, तो दस्युगण द्वारा हत सर्वस्व व्यक्ति जिस प्रकार आर्तस्वर से रोदन करता रहता है, भक्त को उसी प्रकार रोदन करना उचित है।" तात्पर्य यह है कि भगवत्स्मृति ही सब साधना का प्राणस्वरूप है। तभी समस्तशास्त्र ही भगवत्स्मरण की महिमा की घोषणा करते रहते हैं। वद्धजीव अनादिकाल से श्रीभगवान् को भूलकर ही कृष्णवहिर्मुख हुआ है एवं परतत्व के ज्ञानाभाव के लिए घोर संसार दशा प्राप्त होकर

Scanned with CamScanner

(चै: च:) यह भगवत्विस्मृति दूर होगी भगवत्स्मृति के द्वारा ही, तभी तो इस भवरोग का मूल भगवत्विस्मृति की निवृत्ति के लिए सभी शास्त्र भगवतस्मरण की ही घोषणा करते हैं। यथा–

"स्मर्त्तव्य: सततं विष्णुविस्मर्त्तव्यो न जातुचित्।
सर्व्वे विधिनिषेधा: स्युरेतयोरेव किंकरा:॥"

(पद्मपुराण)

अर्थात् "सर्वदा ही श्री विष्णु को स्मरण करें, कदापि उन्हे न भूलें, यही निखिल विधि-निषेध का राजा है। अर्थात् जिस प्रकार अन्य कर्मचारी राजा का अनुसरण करते है, उसी प्रकार शास्त्रोक्त निखिल विधि और निषेध इस मूल विधि निषेध के अनुगत भाव से ही प्रवृत्त हो रही है। इसलिए गीता मे श्रीकृष्ण भी कहते है–

"अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:।
तस्याहं सुलभ: पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:॥"

(८/१४)

"जो अनन्यचित्त से नित्य अनुक्षण मुझे स्मरण करते हैं, उस नित्ययुक्त योगी के पक्ष में मैं अति सुलभ हूँ।" इसलिए श्रीगरुड़पुराण मे इस प्रकार का आक्षेप किया गया है। इसके पहले श्रवण और कीर्तनाङ्ग-वर्णन मे जिस प्रकार नाम, रूप, गुण, लीला और परिकर आदि विषय मे

Scanned with CamScanner

श्रवण-कीर्तन की बात कही गई है, उसी प्रकार इस स्मरणांग-भजन मे भी नाम-स्मरण- रूप-स्मरण की बात कही गई, इस क्रम परिपाटी से ही सुखलभ्य श्रीहरि के गुण, परिकर, सेवा एवं लीला स्मरण का भी अनुसन्धान करना होगा। इस स्थल पर श्रीभगवान के नाम, रूप, गुण, लीला आदि के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञातव्य विषय यह है कि किसी किसी के मत से श्रीविष्णु के सब नामों की समान महिमा है किन्तु पद्मपुराण मे श्री मन्महादेव ने भगवती श्री दुर्गा देवी से कहा है-"रामो रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्रनामभिस्तुल्य राम नाम वरानने।।" अर्थात् एक रामनाम श्रीविष्णु के हजार नाम के तुल्य है। शतनामस्तोत्र मे भी राम-नाम की इस प्रकार की महिमा की बात देखी जाती है, यथा-"विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम्। तादृक् नाम सहस्त्रेण रामनामसमं स्मृतम्।।" अर्थात् श्रीविष्णु का एक एक नाम सर्ववेदपाठ की अपेक्षा भी अधिक फलप्रद है, वही श्रीविष्णु के सहस्त्र नाम एक राम नाम के तुल्य फलदायक है। फिर श्री ब्रह्माण्ड पुराण में वर्णित है-

"सहस्त्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्या तु यत्फलम।
एकावृत्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छेति॥"

Scanned with CamScanner

से ही वही फल लाभ हो जाता है।" श्रीकृष्ण ने स्वयं ही कहा है-"नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं मे परंतप" "हे अर्जुन! मेरे सभी नामों की अपेक्षा श्रीकृष्ण नाम ही मुख्यतम है।" और श्रीकृष्ण नाम का माधुर्य व आस्वादन-चमत्कारित्व भी सर्वाधिक है। श्रीकृष्ण नाम की आस्वादन माधुरी भक्तहृदय-संवेद्य है। श्रीमत् रूपगोस्वामिपाद ने लिखा है-

"तुन्डे तान्डाविनी रतिं वितनुते तुण्डावली लब्धये,
कर्णक्रोड़कड़म्बिनी घटयते कर्णार्व्वुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्रांगणसंगिनी विजयते सर्व्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥"

जिस जिह्वा से उच्चारित होने पर बहु जिह्वा-लाभ के

Scanned with CamScanner

कृष्णनामेर महिमा शास्त्र-साधुमुखे जानि।
नामेर माधुरी ऐछे काँहा नाहि शुनि॥

(चैः चः अन्तः -१म परिः)

श्रील रामानन्द राय एवं श्रीमन्महाप्रभु के पार्षदगण का आनन्द-विस्मय -

यत भक्तवृन्द आर रामानन्द राय।
श्लोक शुनि सभार हैल आनन्द-विस्मय॥
सभे कहे नाममहिमा शुनियाछे अपार।
एमन माधुर्य केहो वर्णे नाहि आर॥

शिक्षाष्टक में श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं कहा है—

"आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतं स्वादनं।
सर्वात्म स्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम्॥"

आनन्दाम्वुधि-विवर्द्धक श्रीकृष्ण नाम, नाम के प्रत्येक वर्ण वर्ण मे अमृत का आस्वादन, उस अमृतधारा मे स्नात होकर भक्त के प्राण सदा के लिए स्निग्ध हो जाते है— यह निरतिशय मधुर श्रीकृष्ण नाम-सर्वदा जययुक्त हो।

Scanned with CamScanner

ना जाने कतेक मधु, श्याम नामे आछे गो,
वदन छाड़िते नाहि पारे।
जपिते जपिते नाम, आकुल करिल गो
केमने वा पासरिव तारे॥
पासरिव करि मने पासरा ना जायगो,
कि करिवे कि हवे उपाय।
कहे द्विज चण्डीदासे कुलवती-कुलनाशे
आपनार यौवन याचाय॥"

उसी प्रकार व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध मे श्रीमत्रूपगोस्वामिपाद लिखते हैं– "असमानोर्द्धरूप- श्री विस्मापित-चराचर:" (भ: र: सि:) यद्यपि श्रीभगवान के सव स्वरूप ही निरतिशय सुन्दर– "सत्यं शिवं सुन्दरम्" तव भी किसी भगवतस्वरूप का रूप ही ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के समकक्ष नही है, अधिक की तो बात ही नहीं। "लावण्यसारमसमोर्द्धमनन्यसिद्धम्" (भा: १०/४४/१४) राधाभावाविष्ट श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामिपाद के प्रति कहा है–

सखि हे! कोन तप कैल गोपीगण?
कृष्ण-रूप-माधुरी, पिवि पिवि नेत्र भरि,
श्लाघ्य करे जन्म-तनु-मन॥
ये-माधुरी-ऊर्द्ध आन, नाहि यॉर समान,

Scanned with CamScanner

परव्योमे स्वरूपेर गणे।
येंहो सव अवतारी, परव्योमे अधिकारी,
ए माधुर्य्य नाहि नारायणे।।
ताते साक्षी सेइ रमा, नारायणेर प्रियतमा,
पतिव्रतागणेर उपास्था।
तेंहो ये माधुर्य्य-लोभे, छाड़ि सव काम-भोगे,
व्रत करि' करिल तपस्या।।
सेइ त माधुर्य्य-सार, अन्य सिद्धि नाहि तार
तेहों माधुर्य्यादि-गुणखनि
आर सव परकाशे, ताँर दत्त गुण भासे,
याहाँ यत प्रकाशे कार्य्य जानि।।

Scanned with CamScanner

स्वरूप है। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रील सनातन गोस्वामिपाद से कहा है—

कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन!
ये रूपेर एककण, डुवाय सब त्रिभुवन
सर्व्वप्राणी करे आकर्षण।।
योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्धसत्त्व- परिणति,
ताँर शक्ति लोके देखाइते।
एइ रूप-रतन भक्तगणेर गूढ़धन,
प्रकट कैल नित्यलीला हैते।।
रूप देखि आपनार, कृष्णेर हय चमत्कार,
आस्वादिते मने उठे काम।
'स्वसौभाग्य' यार नाम, सौन्दर्यादि गुणग्राम,
एइ रूप ताँर नित्यधाम।।
भूषणेर भूषण अंग, ताहे ललित त्रिभंग,
तार उपर भ्रूधनु नर्त्तन।
तेरछ नेत्रान्त वाण, तार दृढ़ सन्धान,
विन्धे राधा-गोपीगणेर मन।।
कोटि ब्रह्माण्ड, परव्योम, ताहाँ ये स्वरूपगण,
ताँ सभार वले हरे मन।
पतिव्रता-शिरोमणि, याँरे कहे वेदवाणी,
आकर्षये सेइ लक्ष्मीगण।।

Scanned with CamScanner

चढ़ि गोपी-मनोरथे, मन्मथेर मन-मथे,
नाम धरे 'मदनमोहन'।
जिनि पंचशर-दर्प स्वयं नव कन्दर्प,
रास करे लञा गोपीगण॥

(चैः चः मध्य २१ परिः)

श्रीपाद लीलाशुक श्रीकृष्ण माधुरी-वर्णन के जाने माने कवि है, उन्होंने इस रूप का अनुभव भी किया है और वर्णन भी किया है—

"मौलिश्चन्द्रकभूषणो मरकत स्तम्भाभिरामं वपु-
र्वक्त्रं चित्रविमुग्धहासमधुरं वाले विलोले दृशौ।
वाचः शैशव शीतलाः मदगज श्लाघ्या विलासस्थिति-
र्मन्दमन्दमये क एष मथुरावीथीं मिथो गाहते॥"

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-५६)

"उनके सिर पर मयूर-पुच्छ का भूषण, देह मरकतमणि के स्तम्भ के समान सुन्दर , मुख चित्रमुग्धहास्यमधुर, नयन युगल भाव विलास से सतृष्ण कटाक्षयुक्त, वाक्य कैशोर

Scanned with CamScanner

है। उनके वर्णन के प्रत्येक पंक्ति में श्रीकृष्णमाधुर्य जैसे मूर्तिमान हो उठा है–

"टल टल काँचा अँगेर लावणि अवनी गड़िया याय।
इषत् हासिर तरंग-हिल्लोले मदन मुरछा पाय॥
किवा से नागर कि खेने देखिनु धैरय वहल दूरे।
निरवधि मोर चित वेयाकुल केने वा सदाइ झुरे॥
हासिया हासिया अंग दोलाइया नाचिया नाचिया याय।
नयन कटाक्ष विषम विशिखे पराण विन्धिते धाय॥
मालती फुलेर मालाटि गलाय हियार माझारे दोले।
उड़िया पड़िया मातल भ्रमर धुरिया धुरिया वुले॥
कपाले चन्दन-फोंटार छटा लागिल हियार माझे।
ए जानि कि व्याधि मरमे वाधल ना कहि लोकेर लाजे॥
एमन कठिन नारीर पराण वाहिर नाहिक हय।
ना जानि कि जानि हय परिणामे दास गोविन्द कय॥"

क्या अपूर्व वर्णन है। रूप रस घुलमिल कर जैसे एक अपरूप आनन्दमूर्ति ढलकर तैयार हुई हो। अन्य किसी भगवत्स्वरूप में ऐसी धारा वर्णन का विषय नही एवं वर्णन भी नहीं–

इसलिए लगभग सभी महाकवियों ने रूप माधुर्य-वर्णन मे श्री वृन्दावन-विहारी को ही विषय रूप मे ग्रहण किया है। उसका कारण यह है कि इस प्रकार अधरविम्ब से

Scanned with CamScanner

मधुर, मन्दहास्य से मंजुल, अमृतनाद से शिशिर, दृष्टिपात से शीतल, अरुण नेत्र से विपुल, एवं वेणुनाद से विश्रुत नायक और कौन है? (श्रीकृष्णकर्णामृतम-६८) रूपरस के वैशिष्टय से, वेशभूषा की वैचित्री से, भावभंगी के लालित्य से धीरललित-नायक श्रीकृष्ण एकमात्र एवं अद्वितीय है।

उसी प्रकार श्रीकृष्ण की गुणमाधुरी भी अतीव विलक्षण है। श्रीकृष्ण के अनन्तगुण है, उनमें चार असाधारण है। एकमात्र ब्रजेन्द्रनन्दन् को छोड़कर अन्य किसी भगवत्स्वरूप मे यह सब सम्भव नही हैं। लीलामाधुरी, प्रेममाधुरी, वेणुमाधुरी, और रूपमाधुरी। रूपमाधुर्य की विलक्षणता की बात मैने कही, लीलामाधुरी की बात भी कहूँगा। प्रेममाधुरी श्रीकृष्ण का एक असाधारण गुण है। "अतुल्य-मधुर प्रेममण्डित-प्रियमंडलः" (भः रः सिः) निरुपाधिक प्रीति का नाम प्रेम है। देह-दैहिकादि के समस्त अनुसन्धान रहित होकर भगवत्- सेवा ही प्रेम का तात्पर्य है–

"अनन्यममताविष्णौ ममताप्रेमसंगताः।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रहादोद्धवनारदैः॥"

एकमात्र श्री भगवान मे प्रेमसंगत ममता, अन्यत्र ममता का अभाव, भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव, नारदादि पूर्वमहाजनगण ने इसी को ही 'प्रेम' आख्या दी है।" यह

Scanned with CamScanner

ममता सम्बन्धनिष्ठ, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इनमे से एक के सम्बन्ध को प्राप्त होकर ही ममता आत्मसत्ता लाभ करती है। ब्रजवासी पार्षदगण श्रीकृष्ण के ऐश्वर्यज्ञान-गन्धशून्य "मोर पुत्र, मोर सखा, मोर प्राणपति" इस शुद्ध माधुर्यमय सम्बन्ध से ही श्रीकृष्ण मे ममत्व-स्थापन करते हैं। कारण ऐश्वर्यजनित सम्बन्ध ज्ञान जहाँ पर जितना अधिक है, प्रेम का उल्लास भी वहाँ उतना ही कम है। प्रेम नि:संकोच को सीने मे रखना चाहता है, सम्भ्रम संकोच आने से ही प्रेम का सीना फट जाता है। एकमात्र ब्रजधाम को छोड़ शुद्धमाधुर्य ज्ञान और कहीं भी नहीं। सख्यरस मे श्रीअर्जुन ने सखाज्ञान से ही सारथी श्रीकृष्ण को कितने आदेश किये, किन्तु जब श्रीकृष्ण के विश्वरूप के दर्शन किये, तब सख्य-व्यवहार के लिए हाथ जोड़कर क्षमा-भिक्षा की। व्रज के सखा राखाल-वालकगण अघासुर, बकासुर, मारणादि श्रीकृष्ण के कितने ऐश्वर्य दर्शन कर के भी "काँधे चढ़े काँधे चड़ाय करे क्रीड़रण। कृष्णे सेवे कृष्णे कराय आपन सेवन॥" (चै: च:) वात्सल्यरस मे श्री वसुदेव-देवकी ने श्रीकृष्ण के आविर्भाव के समय कितनी ऐश्वर्यमय स्तुति की है। व्रज मे माता यशोमति श्रीकृष्ण का निरन्तर ऐश्वर्य दर्शन करके भी पुत्र ज्ञान से - लालन, पालन-ताड़न-भर्त्सन करती हैं मधुर रस में ऐश्वर्य ज्ञान से श्रीलक्ष्मीदेवी श्रीनारायण

Scanned with CamScanner

का वक्षविलास त्याग कर श्रीचरण सेवा मे निरता हुई, व्रज मे राधा रानी मान मे भरकर श्रीकृष्ण को कुंज से विताड़ित कर देती हैं। प्रेम मन्दाकिनी वहीं पर तरंगायित होकर असीम की ओर चलती जाती है। समस्त भाव ही वहाँ सार्थक हैं - समस्त रस ही वहाँ पर मूर्तिमान हैं। "आमाके त ये ये भजे येइ भावे, तारे से से भावे भजि ए मोर स्वभावे" (चै: च: आदि लीला ४ र्थ परि:) इस स्वभाव के अनुरूप श्रीकृष्ण भी अपना अखिल ऐश्वर्य भूलकर इनके प्रेम के स्रोत मे बहे चले जाते हैं। प्रेम मे भक्त और भगवान् आपस मे अन्तरतम भाव से एक दूसरे को पकड़ कर रखते हैं। वहाँ छोटे बड़े का भाव नहीं, ऊँच-नीच का भेद नहीं, प्रेम समस्त व्यवधान को हटाकर विषयालम्बन श्रीकृष्ण को और

Scanned with CamScanner

"रुद्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्व्वन मुहुस्तुम्बुरुं,
ध्यानादन्तरयन सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्वलिं चटुलयन् भोगीन्द्र माघूर्णयन,
भिन्दन्नण्ड कटाहभित्तिमभितो वभ्राम वंशीध्वनिः॥"

(विदग्धमाधव)

"गगनचारि मेघ का गतिरोध, गन्धर्वराज तुम्बुरु के हृदय मे चमत्कारित्व-सम्पादन, व्रह्मा का विस्मयोत्पादन, औत्सुक्यसमूह द्वारा वलिमहाराज का चापल्य-सम्पादन, नागराज का मस्तक घूर्णन, व्रह्माण्डकटाह-विदारण वंशीध्वनि का स्वभाव है।" और भी मुरली के चमत्कार स्वभाव- पतिव्रता का पतिव्रत्य तोड़ दे, सतीरमणी गण को आकर्षण कर लाती है। पतिव्रता का आदर्श वैकुन्ठ की कमलागण वह भी आकृष्ट होती है।

से ध्वनि चौदिके धाय, अन्ड भेदि वैकुन्ठे याय,
वले पैशे, जगतेर काणे।
सभा मातोयाल करि' वलात्कारे आने धरि',
विशेषतः युवतीर गणे॥
धवनि वड़ उद्धत, पतिव्रतार भाङ्गे व्रत
पति-कोल हैते टानि आने।
वैकुन्ठेर लक्ष्मीगण येइ करे आकर्षणे
तार आगे केवा गोपीगणे॥ (चैः चः)

गोपीभाव से श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—

Scanned with CamScanner

"नागर! कह तुमि करिया निश्चय।
आछे यत योग्या नारि
एइ त्रिजगत् भरि,
तोमार वेणु काँहा ना आकर्षय?
कैले यत वेणुध्वनि, सिद्ध मन्त्रादि योगिनी,
दूती हेया मोहे नारीर मन।
महोत्कण्ठा वाढ़ाइया, आर्यपथ छाड़ाइया,
आनि' तोमाय करे समर्पण॥
धर्म्म छाड़ाय वेणुद्वारे हाने कटाक्ष-काम शरे,
लज्जा भय सकल छाड़ाय।
एवे आमाय करि रोष, कहि पतित्यागे दोष,
धार्मिक हञा धर्म शिखाय॥
अन्य कथा अन्य मन, वाहिरे अन्य आचरण,
एइ सब शठ-परिपाटी।
तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्व्वनाश,
छाड़ एइ सब कूटिनाटी॥
(चैः चः अन्त्य १७ परिः)

श्रीपाद लीलाशुक ने कहा, श्रीकृष्ण का वंशीनाद ही उनके अनन्तमधुर मुखकमल के मकरन्द सदृश है।

"मुकुलायमान-नयनाम्बुजं विभो-
र्मुरलीनिनाद-मकरन्द-निर्भरम्।

मुकुरायमान-मृदुगण्डमण्डलं
मुखपंकजं मनसि मे विजृम्भताम्॥"

(श्रीकृष्णकर्णामृतम्-६)

श्रीकृष्ण का मुखकमल जैसे सतत मेरी मानस सरोवर मे विकसित रहे। उनके दोनो नयन जैसे दो अर्धखिले कमल हों, मृदु गण्डस्थल मानो दर्पण के सदृश हो। वंशी का निनाद ही मानो इस कमल का मकरन्द हो।" इस मकरन्द का अति अद्‌भुत मत्तत्ता जनक स्वभाव महाजन वाक्य मे वर्णित है, यथा—

शुनिले वेणुर रव, वन माझे धेनु सव,
माथा तुलि' व्याकुल-नयने।
इति उति फिरे चाय, तृण पत्र नाहि स्वाय,
छुटि' याय श्याम दरशने॥
यमुना उजान वय, ध्याने चित नाहि रय,
योगी मुनि छाड़े सवे ध्यान।
शाखी-शाखे वसि पाखी, मुदिया रहये आँखि,
नवीन नीरद अगेयान॥
सती छाड़े निजपति, लज्जा छाड़े कुलवती,
खुले याय नीविर वन्धन।
पापपुण्य धर्म्माधर्म, भालमन्द कर्म्माकर्म्म,
क्षुण्ण हय सकल नियम॥

Scanned with CamScanner

मृतदेह पाय प्राण, मूक करे वेद-गान,
शुष्कतरु शोभे किशलये
सुगन्धे मंजरी फोटे, गुंजरि भ्रमरा छोटे,
माते तारा मकरन्द-पिये॥
घन घोर वरिषाय, वसन्त वहिया याय,
पिक वधू गाय कलताने।
जराजीर्ण-देहमाझे, नवरसे प्राण राजे,
श्यामेर वाँशरी-मधुगाने॥"

लीलामाधुरी श्रीकृष्ण का अति चमत्कारित्वपूर्ण एक असाधारण गुण "सर्व्वाद्भुत-चमत्कारलीलाकल्लोलवारिधि" (भ:र:सि:) वृजेन्द्र नन्दन श्रीकृष्ण सर्वाद्भुत-चमत्कारिताय पूर्ण लीला रस के कल्लोलित सिन्धु हैं इसलिए वृजलीला सर्वोत्तम है।

श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—

Scanned with CamScanner

गाम्भीर्य नष्ट हो जाता है। जहाँ भगवद्भाव एवं नरभाव विरुद्धधर्म के आश्रय से विचित्र रस की सृष्टि करते करते चलते हैं, वहीं पर लीला माधुर्य की-चमत्कारिता है। यही व्रज की नरवत् लीला है। व्रजधाम मे श्रीकृष्ण का एक ओर जिस प्रकार अपार ऐश्वर्य फूट उठता है, दूसरी ओर उसी प्रकार नरभाव की अतुलनीय माधुरी है। व्रज में श्रीकृष्ण विभु या व्यापकतत्त्व होकर भी माता यशोमती के रज्जु-बन्धन से आवद्ध होते हैं। सर्ववन्दनीय-चरण होकर भी पिता श्रीनन्द महाराज की पादुका युगल सिर पर वहन करते हैं। वे अजित और सर्वाराध्य तत्व होकर भी खेल मे हारने पर श्रीदाम गोप को कंधे पर चढ़ाते हैं। व्रह्मा, महेश्वरादि जिनकी श्रीचरणरेणु कण सिर पर धारण करने का सौभाग्य-लाभ नही कर पाते हैं, वे मानिनी श्रीराधाठाकुराणी के श्रीचरणयुगल सिर पर धारण कर स्वयं को धन्य मानते हैं। व्रजलीला मे भी फिर श्रीराधाराणी एवं गोपीगण के संग श्रीकृष्ण की श्रंगाररसमयी सर्वलीला मुकुटमणि श्री श्री रासादिलीला की ही सर्वाधिक-चमत्कारिता है।

"वात्सल्य-आवेशे कैल कौमार सफल।
पौगन्ड सफल कैल लञा सखा वल।।
राधिकादि लञा कैल रासादि विलास।
वाञ्छा भरि आस्वादिल रसेर निर्यास।।

Scanned with CamScanner

कैशोर-वयस काम, जगत् सकल।
रासादि लीलाय तिन करिल सफल।।"

(चै: च: आदि ४ र्थ परि:)

रासलीला के उज्वल रस मे स्वयं श्रीकृष्ण भी आत्महारा हैं। उन्होंने स्वयं ही कहा है-"सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीला तास्ता: मनोहरा: नहि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत्।।" "मेरी यह गोपाललीला सव ही मनोहर है, किन्तु न जाने, रास लीला की स्मृति चित्त मे उदित होते ही मेरा मन किस प्रकार हो जाता है।" रागानुगीय गौड़ीय वैष्णव-साधकगण की श्रीश्रीयुगल उपासना है। श्रीराधामाध ाव का लीला स्मरण उनका मुख्य और अन्तरंग भजन है।

"वाह्म अन्तर इहार दुइत साधन।
वाह्म-साधकदेहे करे श्रवण-कीर्त्तन।।
मने निज-सिद्ध देह करिया भावन।
रात्रि दिन करे व्रजे कृष्णेर सेवन।।"

(चै: च: मध्य २२ परि:)

रागानुगीय साधक श्रीगुरुप्रदत्त सिद्धस्वरूप मे अभिमान

रागानुगीय वैष्णव साधकगण के लीलास्मरण के मध्य मे एक महाशक्तिशाली शास्त्रीय चिद्वैज्ञानिक सत्य निहित है। "ययाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्व्वीत" (छान्दोग्य-उपनिषद) अर्थात इस विश्व मे जीव जो भाव-अवलम्बन करता है, देहत्याग के बाद भी उसी भाव से भावान्वित बना रहता है।"

श्रीगीता मे श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

"यं यं वापि स्मरण भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥"(श्रीगीता ८/६)

अर्थात् सर्वदा जिस भाव का चिन्तन किया जाता है, उस भाव से चित्त आविष्ट होकर अन्तकाल मे उस भाव का ही स्फुरण होता है एवं अन्तकाल मे जिस भाव का स्मरण कर देह त्याग होता है, उस भाव का ही लाभ होता है। प्रगाढ़ चिन्तन की शक्ति के सम्बन्ध मे श्रीमद्भागवत मे भी देखा जाता है—

"कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपमसन्त्यजन॥"

(भाः ११/६/२३)

"राजन! जैसे भृंगी (विलनी) एक कीड़े को ले जाकर दीवार पर बने अपनी रहने की जगह मे बन्द कर देता है और वह कीड़ा भय से उसी का चिन्तन करते-करते अपने

Scanned with CamScanner

पहले शरीर का त्याग किये विना ही उसी शरीर से तद्रूप हो जाता है।" प्राकृत वस्तु के अनुचिन्तन की यदि इस प्रकार की शक्ति है, तब तो परम चिद्घनमूरति श्रीश्रीराधामाधव के स्मरण से एवं चिन्मयी भक्ति शक्ति की सहायता से जो भक्त का संकल्प सुसिद्ध होगा इसमें संदेह का अवकाश ही कहाँ है? श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा है—

"यथा सङ्कल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान्।
मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत् समुपाश्नुते॥"

(भा: ११/१५/२६)

"जिस पुरुष ने मेरे सत्यसंकल्प स्वरूप मे अपनाचित्त स्थिर कर दिया है, उसी के ध्यान मे संलग्न है, वह अपने मन से जिस समय जैसा संकल्प करता है, उसी समय उसका वह संकल्प सिद्ध हो जाता है।"

श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके श्रीचरणाश्रित-गौड़ीय वैष्णवाचार्यगण की कृपा से रागमार्गीय साधकगण का श्री श्रीराधामाधव की अष्टकालीय लीलास्मरण पद्धति का भण्डार अति विशाल एवं विपुलभाव से समृद्ध है। श्रीलकृष्ण दास कविराज गोस्वामिपाद ने "श्री श्री गोविन्द लीलामृत ग्रन्थ एवं श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने "श्री श्रीकृष्णभावना मृत ग्रन्थ की रचना की है, उसमें श्रीश्रीराधामाधव की अष्टाकालीय लीला अति विस्तारित-भाव से वर्णन

Scanned with CamScanner

कर साधक-समाज को धन्य किया है। श्री श्री गौराङ्ग के लीला चिन्तन को छोड़ देने से श्रीश्रीराधाकृष्ण की लीला मे प्रवेश का लाभ घटित नही होता है; इसलिए बाद मे श्रीश्रीराधारानी का साक्षात् आदेश प्राप्त कर गोवर्द्धन-वास्तव्य श्रीलकृष्ण दास सिद्धबाबा ने श्री श्री गौरगोविन्द का अष्टकालीय-लीलास्मरण-गुटिका साधक समाज के स्मरणोपयोगी कर प्रणयन किया है। जिससे अष्टकालीन लीला की रसानुभूति साधक-समाज महाजनवाणी के माध्यम से लाभ कर पाते, इसलिए श्रीलसिद्ध बाबा ने "भावना सारसंग्रह" नाम से अष्ट कालीन लीला का एक वृहत् चयनिकाग्रन्थ भी प्रणयन किया है। इसलिए गौड़ीय वैष्णव साधक प्रयत्न पूर्वक श्री श्री गौरगोविन्द का लीलास्मरण अभ्यास करें, इसमे आलस्य न करें। "साधन-स्मरण-लीला, इहाते न कर हेला, कायमने करिया सुसार" "युगल चरण सेवि, निरन्तर एइ भावि, अनुरागी रहिव सदाय"-इत्यादि (प्रेमभक्ति चन्द्रिका)

जो भी हो, यह स्मरण पाँच प्रकार का है—स्मरण, धारणा, ध्यान, ध्रवानुस्मृति और समाधि।

स्मरण :— श्रीभगवान से यत्किंञ्चित मनः संयोग होने या किसी प्रकार से मन के सहित श्रीभगवान का सम्बन्ध होने से उसको स्मरण कहा जाता है—

Scanned with CamScanner

"यत्किंजिदनुसन्धानं स्मरणम्" (भः सः-२६७ अनुः)
श्रीब्रह्मरदीय मे वर्णित है—

"येन केनाप्युपायेन स्मृतो नारायणोऽव्ययः।
अपि पातकयुक्तस्य प्रसन्नः स्यान्न संशयः।।"

"इस अव्यय पुरुष श्रीमन्नारायण का जिस किसी भी प्रकार से स्मरण होने से पातकी-पुरुष का चित्त भी प्रसन्नता-लाभ करता रहता है।" पातकी पुरुष का चित्त भी जब श्रीभगवान के स्मरण-प्रभाव से प्रसन्नता लाभ करता है, तो धर्मात्मा पुरुष एवं भक्त का चित्त प्रसन्नता-लाभ करेगा, इसमे क्या आश्चर्य है? इस स्थल पर ज्ञातव्य विषय यह है कि इस स्मरणांग भजन मे श्रीभगवान मे मन के संयोग की एकान्त आवश्यकता है। मन शुद्ध न होने से मनः संयोग सम्भव नही होता। अन्यविषय का स्फुरण रूप मल दूरीभूत न होने से चित्तशुद्ध नही होता है, इस कारण स्मरणांग-भजन सब के पक्ष मे सम्भव नही। पित्तदूषित जिह्वा जिस प्रकार मिश्री के मिठास को ग्रहण नहीं कर पाती है, उसी प्रकार अविद्या दूषित मन श्रीभगवान के स्वतः ही मधुर रूप, गुण आदि का माधुर्य ग्रहण करने मे सक्षम नही होता है। तथापि श्रीहरि स्मृति ही समस्त साधन का प्राणस्वरूप है। इसलिए साधकगण को श्रवण कीर्त्तनादि भजन के संग स्मरण अभ्यास करना चाहिए। श्रवण-कीर्तनादि के द्वारा जैसे जैसे चित्तशुद्ध

Scanned with CamScanner

होता जाता है, तदनुरूप साधक क्रमशः स्मरणांग के उन्नत स्तर पर आरोहण करता जाता है। इस अभिप्राय से ही स्मरणांग के यह पाँच सोपान प्रदर्शित हुए हैं। इस स्थल पर और भी एक विचारणीय विषय यह है कि, यह स्मरण व्यापार प्रथमतः साधक के निकट पुरुष-प्रयत्न-साध्य मालूम होता है इस कारण यह उनके पक्ष मे दुःसाध्य हो जाता है। अपनी भजनचेष्टा आदि का अभिमान त्याग कर भगवत्कृपा-अवलम्बन से उनके रूप-गुणादि की चिन्ता करने से अनायास ही चित्तशुद्धि हो जाती है। किसी के भी मन में आ सकता है, यदि स्मरण और चित्तशुद्धि भगवत्कृपा सापेक्ष ही है, तो फिर साधन-प्रयास की क्या आवश्यकता है? इस प्रकार के साधन-शैथिल्य-निवारण के लिए साधु-शास्त्र का उपदेश- प्रयत्नवान पुरुष के पक्ष में फलप्राप्ति के विषय में उसकी भजन-प्रचेष्टा भगवान द्वारा अनुग्रहीत होने से ही फलप्रद होती है, अन्यथा नही। जिस प्रकार इक्षुदण्ड स्वभावतः रसपूर्ण होकर भी पेरने के अनुरूप ही उससे रस निकलता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् कृपारसपूर्ण होकर भी साधक के भजन-प्रयास यत्नाग्रह के अनुरूप ही उससे कृपारस वाहर निकलता है।

धारणा :— "सर्व्वतश्चित्तमाकृष्य सामान्य कारेण मनोधारणं धारणा।" अर्थात् सव विषयों से चित्त-

Scanned with CamScanner

आकर्षण-पूर्वक सामान्यभाव से श्रीभगवान के रूप, गुण, लीलादि मे मनोनिवेश का नाम 'धारणा' है। यथा—(भा: ११/१४/२६)

"विषयान् ध्यायतश्चितं विषयेतु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥"

श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव के प्रति कहा—"विषय ध्यानकारी व्यक्ति का चित्त जैसे विषय में ही आसक्त रहता है, उसी प्रकार मेरे स्मरणकारी का चित्त मुझ मे ही निमग्न रहता है।" जिस प्रकार जलमग्न व्यक्ति के ऊपर-नीचे चारों ओर जल ही जल, उस रूप मेरे चिन्तनकारी-व्यक्ति के सर्वत्र ही मैं, मुझे छोड़कर वह और कुछ भी नहीं देखता है। कृष्ण-विस्मृत जीव का यह जो भवकूप में पतन इसका एकमात्र कारण ही विषयध्यान है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है—

"ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् वुद्धिनाशो वुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥"

"विषय का ध्यान करते करते मानव की विषय मे आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से काम या विषय भोग की अभिलाष पैदा होती है, काम मे बाधा आने से क्रोध का

Scanned with CamScanner

अभाव जन्मता है, उससे स्मृतिविभ्रम अर्थात् शास्त्रोपदिष्ट स्वार्थ-विषयक स्मृति भ्रंश होता है, उससे वुद्धिनाश, उससे सर्वनाश अर्थात् इससे संसार कूप मे पतन होता है।" इसलिए इस भवकूप में पतित-जीव के पतन का मूल कारण ही है "विषय-ध्यान"। इसीलिए कहा गया है- प्रयत्नशील-स्मरणनिष्ठ-साधक देह-दैहिकादि विषय मे मन जाने से ही उसको आकर्षण कर उसको श्रीभगवान के नाम, गुण, लीला मे निविष्ट करें। इसी को 'धारणा' कहा जाता है।

ध्यान :— "विशेषतो रूपादि-चिन्तनं ध्यानम्" विशेष भाव से रूपादि-चिन्तन का नाम 'ध्यान' है। स्मरण और ध्यान में कुछ पार्थक्य देखा जाता है, श्रीभगवान मे यत्किंचित् मनः संयोग ही स्मरण एवं श्रीभगवान की श्रीमूर्ति के अंग-प्रत्यंग के रूप-लावण्यादि की भावना ही ध्यान है। इसीलिए कहा जाता है विशेष भाव से रूपादि-चिन्तन ही ध्यान है।

श्रीनृसिंह पुराण मे ध्यान की महिमा वर्णित है—

"भगवच्चरण द्वन्द्वध्यानं निर्द्वन्द्वमीरितम्।
पापिनोऽपि प्रसंगेन विहितं सुहितं परम्॥"

"भगवच्चरणारविन्द युगल-ध्यान ही निर्द्वन्द्व अर्थात् शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, जरा-मरणादि-जनित दुःख-परम्परा रहित है। पापी जन भी यदि प्रसंगक्रम से

Scanned with CamScanner